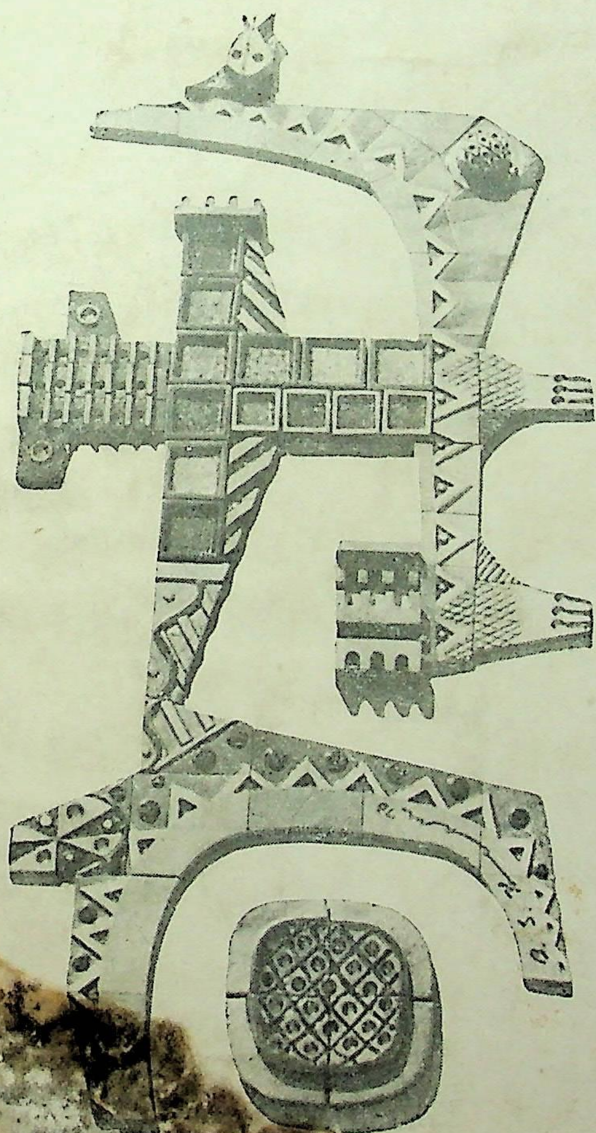
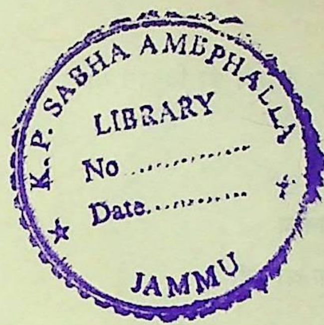
शीराज़ा

हिन्दी



दो रुपये

[illegible] ऑफ आर्ट [illegible] जम्मू



१६

शीराज़ा

द्विमासिक हिन्दी

ुख सम्पादक : मुहम्मद यूसुफ टेंग सम्पादक : रमेश मेहता

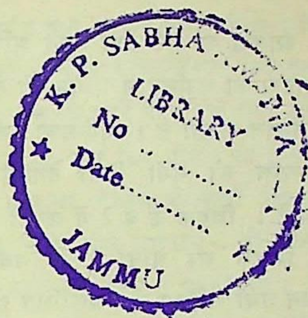
र्ष : १७ / अंक : १ (अप्रेल-मई, १९८१) ; सम्पादकीय पत्र व्यवहार : रमेश मेहता, म्पादक : शीराज़ा हिन्दी, जे० एण्ड के० कल्चरल अकादमी, नहर मार्ग, जम्मू ;

ोन : ५०४० यह अंक : दो रुपये वार्षिक शुल्क : दस रुपये

अनुक्रमणिका

ख

———



समकालीन हिन्दी नाटक—एक

आजके हिन्दी नाटक का शिल्प

—डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

शिल्प की दृष्टि से नाटकों के दो मुख्य वर्ग माने जा सकते हैं : क—**यथार्थवादी**, ख—**कल्पनावादी**।

यथार्थवादी नाटक मंच-सज्जा, पात्र-परिकल्पना, संवाद-योजना आदि से मंच पर यथार्थ का भ्रम पैदा करने की कोशिश करता है। इस प्रकार का नाटक नपे-तुले रंगमंच पर एक सीधी कहानी कह देता है। यहां दर्शक की कल्पना के सहारे बहुत कम तत्त्व छोड़े जाते हैं। दूसरी ओर **कल्पनावादी** नाटक में रोमांस, कल्पना, स्वप्न आदि का आश्रय लेकर दर्शक के मन पर अपेक्षित प्रभाव अंकित किया जाता है। कल्पनावादी नाटक से अभिप्राय जीवन से कटे नाटक से न होकर ऐसे नाटक से है जो अपनी बात अभिधा में नहीं कहता। कहीं वह मिथक का प्रयोग करता है, कहीं एक पात्र का सामान्यीकरण कर देता है, कहीं अपनी बात प्रतीकों के माध्यम से कहने लगता है और कहीं आंतरिक मनोभावों को सहायक दृश्य के रूप में प्रस्तुत करता है। नये हिन्दी नाटक की प्रवृत्ति इसी ओर है। इस प्रवृत्ति के सशक्त आरंभिक दृष्टांत **अंधा युग** (धर्मवीर भारती) और **आषाढ़ का एक दिन** (मोहन राकेश) में देखे जा सकते हैं। **अंधा युग** "महाभारत की कथा के माध्यम से सामयिक युग के विघटित मूल्यों का मार्मिक चित्र उभारता है, व्यक्ति के कर्त्तव्यों और राष्ट्र के कर्णधारों के दायित्व पर सार्थक प्रश्न लगाता है—अन्धे राजा की प्रजा कहां तक देखे ?"[१] नाटकों में मिथकीय प्रयोग की तीन दिशाएं देखी जा सकती हैं—१. पौराणिक पात्रों एवं कथा-सूत्रों का नवीकरण। जैसे—अंधा युग, शम्बूक की हत्या, एक और द्रोणाचार्य तथा पहला राजा। २. ऐतिहासिक पात्रों एवं कथासूत्रों का नवीकरण। जैसे—आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस। ३. लोककथाओं और रूढ़ियों पर आधारित नाटक। जैसे—खेला पोलमपुर, सगुन पंछी, नाटक तोता मैना।

१. डॉ० रीता कुमार : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : पृष्ठ २६

२. डॉ० ल० ना० लाल : कलंकी : पृष्ठ ७–८

आषाढ़ का एक दिन बहुत शक्तिशाली ढंग से शिल्प के नये आयाम स्थापित करता है। इस नाटक का कालिदास मानव की सर्जनात्मक शक्तियों का प्रतीक बनकर नये ढग के पात्रों की शुरुआत करता है। मल्लिका मानवीय आस्था की प्रतीक बनकर नारी-पात्रों से सम्बन्धित परिकल्पना को नयी दिशा देती है। वस्तुतः **आषाढ़ का एक दिन** भी मिथक पर आधारित नाटक है। मिथक के बारे में लक्ष्मी नारायण लाल का कहना है, "विशेषकर नाटक में जब कोई मिथक आ जाता है तो मिथक की शक्ति इतनी बढ़ती है कि उससे सहज ही इतिहास; वर्तमान तथा भविष्य जैसे प्रकाशित हो उठता है। मिथक पुराबिम्ब बनकर त्रिआयामीय हो उठता है...।"[२] **लहरों के राजहंस** में राजहंस सरोवर को छोड़ कर उड़ जाते हैं तो लाल का सरोवर अनायास सूख जाता है। कैद से छूटा वृद्ध सत्ता के मुंह पर सच कहता है :

"बन्द कराया था तुम्हीं ने सत्य कहने पर,
उस बार
सारी जवानी कारागार में पिस गई
अब शेष है बुढ़ापा
ले लो इसे भी
पर कहूंगा—और भी शक्ति से कहूंगा
तुम्हीं लोगों ने सुखाया है सरोवर को।[3]"

मणिमधुकर के **खेला पोलमपुर** में लोककथा का प्रख्यात मानक है : एक राजा जिसके महल में भूतों का निवास है, एक साधारण व्यक्ति भूतों पर विजय प्राप्त करता है ; राजा अपनी शर्त पूरी नहीं करता ; हानि को प्राप्त होता है। लाल के नाटक **तोता मैना** और **सगुन पंछी** में तोता मैना का प्रयोग किया गया है।

कल्पनावादी नाटक केवल मिथकों को लेकर चले हैं, ऐसी बात नहीं है। मुद्राराक्षस के **तेंदुआ, तिलचट्टा, मरजीवा, योअर्स फेथफुली,** मणिमधुकर का **रस गन्धर्व**, रमेश बक्षी का **वामाचार** कल्पनावादी हैं, लेकिन मिथकीय नहीं। **तेंदुआ** में मिसेज़ मदान माली पर यातना के प्रयोग करती है और रेणुराय तेंदुआ पालती है। माली को बिजली का शाक देने पर मिसेज़ मदान कहती है : "हलो ब्रूट...कैन यू डान्स...क्या तुम नाच सकते हो ?" बिजली के तार का सिरा माली की नाभि पर छुआने से वह चीखकर उछलता है तो रेणुराय ताली बजाकर खुशी से कह उठती है—"गुड। उसने किया...और करेगा...गिव हिम ऐन अदर शाट...।"[४]

प्रकाश-योजना की सुविधाओं के कारण नाटक की दृश्य-योजना में भी क्रांति आई है। राकेश के नाटकों का अंकों में विभाजन है ; अंकों का दृश्यों में विभाजन नहीं है। मंच पर एक सेट सारे नाटक के लिए काफी है। एक ही कमरे में सारा नाटक समाप्त हो जाता है। समय में परिवर्तन मंच-सज्जा और संवादों से परिलक्षित होता है। **मरजीवा, तेंदुआ**

---

३. ल० ना० लाल : सूखा सरोवर : पृष्ठ १५

४. मुद्राराक्षस : तेंदुआ : पृष्ठ ६३

(मुद्राराक्षस), **सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक** (सुरेन्द्र वर्मा) में यही स्थिति है। **सन्तोला** (मुद्राराक्षस) में दो अंक हैं लेकिन अंकों के बीच कालान्तराल दिए गए हैं। इन अन्तरालों के बारे में लेखक ने महज़ इतना कहा है : "चूंकि सारे पात्र एक ऐसी गुफा में कैद हैं जहां न दिन है न रात···इसलिए एक दिन या दो-चार दिन बीतने का सिलसिला अलग दृश्य द्वारा नहीं दिया गया है।"[५] **त्रिशंकु, अब्दुल्ला दीवाना, योअर्स फेथफुली तिलचट्टा** में कहीं अंक या दृश्य-विभाजन नहीं है। **खेला पोलमपुर** में पूर्वार्ध और उत्तरार्ध—दो भाग हैं। **रस गन्धर्व** की भी यही स्थिति है। **तीसरा हाथी** में दो भाग हैं ; बीच में मध्यान्तर। अंकों और दृश्यों के बारे में **तीसरा हाथी** के लेखक का विचार है : "रंगमंच यथार्थ से दूर जितना कल्पनाशील होगा, मेरा विश्वास है वह उतना ही अधिक प्रभावशाली लगेगा। नाटक को अंकों में बांटने, बार-बार डिम-आउट के निर्देश देने और लगातार दृश्य के बीच समय-सूचक सकेत देने में मेरा विश्वास नहीं है इसलिए प्रकाश, संगीत या एण्ट्री का क्षणिक व्यवधान भी बाधक बनेगा।"[६] इस तरह नये नाटक में एकांकी-बहुअंकीनाटक का भेद समाप्त हो गया है।

मध्यस्थ की नई भूमिका

इधर एक नया रुझान नाटकों में दिखाई देने लगा है : पर्दा उठने से पहले एक इंट्रोडक्टरी दृश्य की योजना। रमेश बक्षी के **वामाचार**, लाल के **सत्य हरिश्चन्द्र** और **सगुनपंछी**, राजकुमार शर्मा के **नीलाम घर** उदाहरण के लिए उद्धृत किए जा सकते हैं। लाल के **व्यक्तिगत** में दृश्य हैं अंक नहीं, शर्मा के नीलाम घर में हर दृश्य में एक नया कथा-सूत्र है। मृदुला गर्ग के **एक और अजनबी** में फ्लैश इन और फ्लैश आउट का सहारा लेकर ऐसे दृश्यों की योजना की गई है जिनमें स्वप्नों और कल्पनाओं को आकार दिया गया है। इसी प्रकार की योजना **सन्तोला** की भी है। लेकिन सन्तोला में नये दृश्यों की जगह स्वगत कथनों से काम लिया गया है। इस नाटक के लेखक का कहना है : "जहां कहीं भी ये स्वगत आते हैं, उनका अर्थ यह हो जाता है कि उनके पहले के दृश्य खण्ड का पात्र-विशेष की भांति मनःस्थिति के रूप में प्रतिफलन हुआ है। स्वगत बोलने वाले पात्र में उससे पहले की घटना का सारा प्रभाव केन्द्रित हो जाता है।"[७] लाल के व्यक्तिगत में इसी प्रकार का काम श्रीमती आनन्द जैसे पात्र की रचना से सम्पन्न किया गया है।

यहीं कतिपय नाटककारों द्वारा अपने नाटकों के लिए खुले मंच की योजना का ज़िक्र ज़रूरी है। खुला मंच लोकधर्मी नाट्य परंपरा की देन है। सर्वेश्वर कृत **बकरी** में भी नौटंकी के तत्त्व पाए जाते हैं। दोहे और बहरेतवील का प्रयोग इस नाटक में काफी अच्छा हुआ है—

"दिन में दो रोटी के हों जब देश में लाले पड़े,
दिल दिमाग औ' आत्मा पर इस कदर जाले पड़े,

---

५. मुद्राराक्षस : सन्तोला : पृष्ठ २८

६. रमेश बक्षी : तीसरा हाथी : पृष्ठ ७-८

७. मुद्राराक्षस : सन्तोला : पृष्ठ २८

× × ×

तोंद अड़ियल पिचके पेटों पर चलाए गोलियां,

हर तरफ निकलें क्रांतिकारी टोलियां ।"[८]

विनोद रस्तोगी कृत **नई लहर** नौटंकी शैली में लिखा गया है । लेकिन साहित्यिक भाषा और सीधे प्रचारात्मक संवादों ने उसे लोक-धरातल की चीज़ नहीं रहने दिया । उदाहरण—

"इस धरती पर ही कहीं रहते थे कुछ लोग ।

श्रम की पूजा वन्दना श्रम ही उनका योग ।

× × ×

बिछ गया जाल नहरों का फसलें हंसीं

खुल गये कारखाने नये से नये ।

हाथ सब उठ पड़े, सब कदम चल पड़े

और सृजन के महायज्ञ में जुट गये ।"[९]

नौटंकी के रंगा का प्रयोग सत्य हरिश्चन्द्र में भी हुआ है । लाल की विशेषता यह है कि उन्होंने गायन में लोकभाषा का प्रयोग किया है । कुछ संवाद भी नौटंकी शैली के हैं । इस शैली में लिखा गया खूबसूरत नाटक है मुद्राराक्षस का **आला अफसर** । दोहा, बहरेतवील, कहरवा, दौड़, चौबोला आदि नौटंकी में प्रयुक्त होने वाले छन्दों का प्रयोग इस नाटक में हुआ है । संवाद भी नौटंकी शैली के हैं । इस नाटक में कोरस का प्रयोग भी हुआ है । **त्रिशंकु** में भी खुला मंच है और प्रेक्षागृह में विभिन्न वर्गों के लोगों के बैठने की व्यवस्था की गयी है । रंगली-रंगला के वार्तालाप से झल्लाकर एक प्रेक्षक चिल्लाता है—बंद करो यह बकवास । इसके बाद थियेटर वाला लीडर, बुद्धिजीवी आदि पर नाटक बनाने की बात करता है । सुशील कुमार सिंह के नाटक **सिंहासन खाली है** में सूत्रधार यह भूमिका निभाता है । **खेला पोलमपुर** का आरंभ मंगलाचरण से हुआ है लेकिन बीच-बीच में कोरस का इस्तेमाल किया गया है । कथा-गायन (कोरस) का उदाहरण देखिए :

"इस तरह शुरू होता है नाटक—

पोलमपुर का !

सोती है रात जहां पर रोज़

छुपा कर ताज़ा ज़ख्मों को ।

हर सुबह रक्त के धब्बे लेकर

जगती है ।"[१०]

इसी नाटक का मंगलाचरण इस प्रकार है :

---

८. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : बकरी : पृष्ठ ६३

९. विनोद रस्तोगी : नई लहर : पृष्ठ १६, ५०

१०. मणिमधुकर : खेला पोलमपुर : पृष्ठ १६

सदा रगशाला
दर्शक-देवों से भरी रहे
नाटक जन संघर्ष और साहस की
कथा कहे...
अहे शिवशंकर नटराज !"[११]

जगदीश चन्द्र माथुर के **पहला राजा** में नटी और सूत्रधार का प्रयोग किया गया है। इस अंक के सूत्रधार-नटी के संवादों की बानगी देखिए :

"नटी —भला नाटक शुरू करते समय आजकल कोई प्रार्थना करता है ?

सूत्रधार—माना कि तुम आधुनिका हो – मॉर्डन हो, लेकिन याद रखो...

नटी —कि तुम रूढ़िबद्ध सूत्रधार, कंजरवेटिव डाइरेक्टर का बाना पहने मंच पर उतरे हो !..."[१२]

मधुकर के 'बुलबुल सराय' में नट-नटी और कोरस का प्रयोग है। अभिप्राय यह कि नये नाटककार ने अपनी सुविधानुसार मंगलाचरण, सूत्रधार, रंगला-रगली, कोरस, मध्यस्थ पात्र (जैसे थियेटर वाला) की योजना करके अपनी नाट्यकला का विकास किया है।

सम्वाद की सफलता

नये नाटककार पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि वह सिर्फ सम्वाद लिख देता है कार्य या एक्शन की ओर ध्यान नहीं देता। **आषाढ़ का एक दिन** के सम्वाद एक तरफ बहुत छोटे और क्षिप्र हैं तो दूसरी ओर मल्लिका का एकालाप तथा कालिदास का एक संवाद काफी लम्बाई लिए है। वास्तव में सम्वाद की सफलता उस लगाव में निहित है जो दर्शक पात्र के प्रति महसूस करने लगता है। जब यह लगाव स्थापित हो जाए तो दर्शक लम्बा संवाद सुनने के लिए भी तैयार रहता है। यहां यह भी स्मरणीय है कि प्रकाश और ध्वनि के संयोजन से लेखक निर्देशक से मांग करता है कि उसके लम्बे संवादों को भी नाटक में स्थान दिया जाए ; साथ ही दर्शक से भी बात सुनने की स्वीकृति चाहता है। रमेश बक्षी के **वामाचार** में 'निगेटिव' का पहला ही संवाद काफी लम्बा है और दर्शक के धैर्य की परीक्षा लेता है। रमेश बक्षी के **तीसरा हाथी** में मोहन, सोहन और विभा के आरंभिक सवाद ही पृष्ठ-पृष्ठ भर लम्बे हैं लेकिन कुछ कार्यों द्वारा (जैसे कपड़े ढूंढना, बजर की आवाज़ से चौंकना, किसी नये पात्र का मंच पर आना) इस लम्बाई को तोड़ा गया है। छोटे संवाद भी दर्शक को उबा सकते हैं। 'सगुन-पंछी', 'बुलबुल सराय', 'त्रिशंकु' में इस तरह के संवाद देखे जा सकते हैं। नाटकीय आशिल्पन के बारे में मुद्राराक्षस का कहना है : "आशिल्पन का उद्देश्य होता है अभिव्यक्ति को इतना सीमित कर देना कि वह देश-काल और व्यक्ति के रिश्तों से कट कर स्वतन्त्र रूप ले सके।"[१३] मेरे अपने

---

११. मणि मधुकर : खेला पोलमपुर : पृष्ठ १३
१२. जगदीश चन्द्र माथुर : पहला राजा : पृष्ठ १०
१३. मुद्राराक्षस : गुफाएं : पृष्ठ १७

ख्याल में, ऐसा आशिल्पन जो दर्शक में केवल एक विचित्र का बोध जगा कर रह जाए, सफल आशिल्पन नहीं है। कम से कम हिन्दी नाटक और थियेटर को ऐब्सर्ड की उस हद तक अभी फेंका नहीं जा सकता।

नये नाटक की बानगी दिखाने के लिए कुछ सवाद यहां प्रस्तुत किए जाते हैं :

आषाढ़ का एक दिन[१४]

मल्लिका—...मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूं जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है ।

अम्बिका—और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र ; कोमल और अनश्वर ! हूं !

खण्डित यात्राएं[१५]

नंदिता —मेरा तो ख्याल है कि नारी के पास केवल तन होता है और शवदाह के बाद नारी का तो हिसाब-किताब साफ हो जाता है।

अपनी पहचान[१६]

अर्पणा —...उस समय मुझे अपना फ्लैट एक ऐसा परंपरागत घर लग उठा था जिसमें एक रात भी रह लेती तो मेरा दम घुट गया होता।

तीसरा हाथी[१७]

शुभा —...जरा पापा के बारे में सोचो मोहन। अगर यह (हाथी) गिर गया तो क्या सोचेंगे वे। हमारे पुरखों ने इसे बनाया था।

सोहन – पता नहीं दीदी अच्छे-भले घर के ऊपर इस हाथी का क्या मतलब है। वह बारादरी होती या रामझरोखा होता तब भी बात समझ में आती लेकिन हाथी ?

ये संवाद एक व्यक्ति के न रह कर सबके हो जाते हैं। नया नाटककार अपने नाटक में विचार और मन:स्थिति का अंकन करता है घटना का उसके यहां इतना महत्त्व नहीं है। घटना समय और स्थान से बंधी रहती है जबकि नये नाटक का कथ्य इन सीमाओं को तोड़ कर सार्वजनीन और सार्वकालिक हो जाता है।

नाटकीय भाषा के दो स्पष्ट आयाम होते हैं : शाब्दिक भाषा तथा शारीरिक भाषा। "आषाढ़ का एक दिन" में बादलों का घुमड़ना, अंबिका का छाज फटकते रहना, झरोखे से घोड़े की टापों की ध्वनि, वस्त्रों का न सूखना, स्वस्तिक चिह्नों का मद्धम पड़ते जाना, कुंभों का टूटना कहीं न कहीं मल्लिका की आन्तरिक और बाह्य सहेजन और टूटन से जुड़ी ध्वनियां हैं। 'लहरों के राजहंस' में हंसों का चिल्लाना, भिक्षुओं का समवेत गान, चिड़िया की खुट-खुट, 'अब्दुल्ला दीवाना' में चपरासी द्वारा कुत्तों को मीठी गोलियां खिलाना, जज द्वारा काल्पनिक

---

१४. राकेश : आषाढ़ का एक दिन : पृष्ठ २१

१५. नरेश मेहता : खण्डित यात्राएं : पृष्ठ ६१

१६. सुदर्शन चोपड़ा : अपनी पहचान : पृष्ठ ४५

१७. रमेश बक्षी : तीसरा हाथी : पृष्ठ १०७

ज़ूरी को सम्बोधित करना इसी प्रकार के उदाहरण हैं । शब्दातीत अर्थों की पहचान और उनका सम्प्रेषण नये नाटक की विशेषता है ।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में ओक्काक का छोटा सा वाक्य 'उत्सव के बाद का सूनापन !''[18] उसके आन्तरिक द्वन्द्व को पूरी समग्रता से प्रकट कर देता है । 'योअर्स फेथफुली' में मृत क्लर्क का यह संवाद निम्नमध्यवर्ग की सारी विसंगतियां हमारे सामने रख देता है : ''मैंने सोचा···मैंने रूप से शादी कर ली है···फिर मैंने सोचा पति-पत्नी एक ही दफ्तर में काम नहीं कर सकते । रूल है न सर लेकिन यह सब झूठ था···एक सपना जैसा··· वैसे सपना हम लोगों को आता ही कहां है सर, मैं ठीक कह रहा हूं सर···सपना···हमें सपना देखना भी तो नहीं आता न सर··· ।'[19] भाषा को अर्थ के विस्तृत आयामों से जोड़ने वाले कुछ अन्य उदाहरण हैं : १. 'बस इतना ही समझ पाते हैं लोग !' **सुन्दरी**—(लहरों के राजहंस) २. 'हम सदा मूल्य ही चुकाते रहे हैं ; क्यों···?' **तीसरा कृषक**—(कलंकी) ३. 'उसने तुम्हें बुलाया इसका मतलब है जाना होगा । और जाने का मतलब ? जाने का मतलब तुम जानती हो ?' **आदर्श** (मरजीवा) ४. 'मतलब यह कि इस वक्त आपके लिए नमकीन बन जाऊं ?' वह—(व्यक्तिगत) ।

नये नाटक की भाषा

शाब्दिक भाषा की दृष्टि से हिन्दी नाटक की भाषा के दो प्रकार रहे हैं : (क) संस्कृत निष्ठ (ख) सामान्य बोल-चाल की हिन्दी । यहाँ बोल-चाल की हिन्दी से मतलब आंचलिक बोलियों या भाषाओं का प्रयोग नही है बल्कि ऐसी हिन्दी का प्रयोग है जिसे समझने के लिए आम पढ़े-लिखे आदमी को शब्दकोष का सहारा न लेना पड़े । हिन्दी नाटक की भाषा दिन प्रतिदिन सुगमता की ओर जा रही है । 'लहरों के राजहंस' की सी संस्कृत-निष्ठ भाषा पर मुद्राराक्षस ने प्रश्नचिह्न जड़ते हुए कहा था—'आमतौर पर लोगों ने एक बहुत रद्दी और नाटकीय दृष्टि से खतरनाक धारणा बना रखी है कि अगर नाटक मुगलकालीन इतिहास से सम्बधित हो तो उसमें बेपनाह उर्दू होनी चाहिए और अगर वह भारतीय अतीत के हिन्दू कथानकों से सम्बंधित हो तो निश्चय ही उसे संस्कृत-निष्ठ होना चाहिए । यह बचकानी बात है ।'[20] राकेश स्वयं अपने आगामी नाटकों—**आधे अधूरे** और **पैर तले की जमीन** में भाषा के नये स्तरों का स्पर्श करते हैं । पौराणिक नाटक की भाषा भी बहुत सस्कृत-निष्ठ होना ज़रूरी नहीं, इसका परिचय हमें लाल के **नरसिंह कथा** में मिलता है । दूसरी तरफ भीष्म साहनी के **हानूश** में अनावश्यक रूप से कठिन उर्दू का प्रयोग किया गया है ।

नये पात्रों की खोज

नये नाटक में पात्रों की भीड़ नहीं होती । लाल के **व्यक्तिगत** में तीन, मुद्रा के **गुफाएं** में

---

१८. सुरेन्द्र वर्मा : सूर्य की··· : पृष्ठ : ३३

१९. मुद्राराक्षस : योअर्स फेथफुली : पृष्ठ ८८

२०. वही : पृष्ठ ११

दो, बृजमोहन शाह के **शह ये मात** में पांच पात्र हैं। **सिंहासन खाली है** में तीन मुख्य पात्र हैं— सूत्रधार, एक, दो और तीन। **एक और अजनबी** में नौ पात्र हैं लेकिन दो को डबलरोल दिया जा सकता है।

सम्वादों के सामान्यीकरण वाला सिद्धान्त पात्रों पर भी लागू होता है। 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका, 'लहरों के राजहंस' की सुन्दरी, 'रातरानी' की कुन्तल, 'अंधा कुआं' की सूका, विष्णु प्रभाकर के 'टगर' की टगर, 'मरजीवा' की भूमि एक ही पात्र के विविध रूप हैं। इन्हें अलग-अलग नाम न भी दिए जाएं तो कोई फर्क नहीं पड़ता। कालिदास और विलोम, नन्द और श्यामांग, काला सूट वाला आदमी एक-दो-तीन, 'व्यक्तिगत' के मैं और वह, 'एक और अजनबी' में शानी जगमोहन बनाम स्त्री-पुरुष, 'वामाचार' में निगेटिव और पाजिटिव, रस-गंधर्व में अ त्र स द, 'बुलबुल सराय' में क, ख, आ, ई इसी सामान्यीकरण के प्रतीक हैं।

नया नाटककार मंच की हर वस्तु को सार्थक और महत्त्वपूर्ण मानता है। तीसरा हाथी में हाथी और पोस्टर ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बज़र की आवाज़ भी एक स्वतन्त्र पात्र है। लेखक का स्वयं कहना है– 'ध्वनि वह बज़र की हो, फोन की हो या बजाए जाने की या कुदाली चलने की—सब पात्र हैं। उन्हें ठीक से संयोजित किए बगैर यह नाटक अपना अपेक्षित प्रभाव नहीं दे सकता।"[२१] सुदशन चोपड़ा कृत नाटक 'अपनी पहचान' के दूसरे दृश्य में दो डायलाग हैं तीसरे में एक भी नहीं। कालबेल बजने पर अर्पणा उठती है, कपड़े पहनती है, दरवाज़ा खोलती है। नौकरानी भीतर आकर किचन में चली जाती है। चौथे दृश्य में उत्तर सो कर उठता है, ज़ख्मों पर आयोडेक्स लगाता है, कपड़े पहनता है और एक पेग शराब डाल लेता है। 'लहरों के राजहंस' में मंच के दोनों ओर स्थापित स्त्री-पुरुष की मूर्तियां बहुत कुछ कह जाती हैं। 'तीसरा हाथी' में बज़र, पीकदान, ज़ीना और आरामकुर्सी, 'रात रानी' में खिड़की से झांकती लतर, 'त्रिशंकु' में कूड़ादान सार्थक और वाचाल प्रतीक हैं।

चुनौतियों के बीच नया नाटक

आज के नाटककार को कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। उसे एक ऐसी भाषा की तलाश करनी है जो सम्प्रेषण का सही माध्यम बन सके। उसे सिनेमा और टैलीविज़न से मुकाबला भी करना है क्योंकि ये दो विधाएं मनोरंजन और सम्प्रेषण की अथाह संभावनाएं संजोए हुए हैं। हिन्दी का दुर्भाग्य यह भी है कि अभी तक उसकी अपनी रंगमचीय परम्परा नहीं बन पाई। हिन्दी नाटकों का मंचन बड़े शहरों की चीज़ होकर रह गया है। प्रयोग की धुन में नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' लोकनाट्य के पास आकर भी काफी मुश्किल चीज बना रहा है। नये नाटककार से लाल साहस और संकल्प की मांग करते हैं[२२]—१. नाट्य-रचना का साहस, २. उसे प्रस्तुत करने अथवा कर्म का साहस, ३. प्रतिष्ठित की छाया से लोगों को बाहर लाने का साहस और ४. इन साहसों की सूली पर चढ़ने की कीमत चुकाने का साहस।

---

२१. रमेश बक्षी : तीसरा हाथी : पृष्ठ ७

२२. ल० ना० लाल : कलंकी : पृष्ठ ६

पश्चिम की अनुकृति करके हम अपने नाटक को पूरी तरह ऊल-जलूल या दुरूह भी नहीं बना सकते। 'वामाचार' की अपेक्षा 'आला अफसर' के द्वारा मुद्राराक्षस अपनी बात अधिक सफलता से कह सके हैं। नये नाटक का शिल्प अपनी आवश्यकताओं, अपनी मजबूरियों से जन्म लेगा। हमें ऐसे नाटक लिखने होंगे जो एक तरफ यांत्रिक सुविधा-सम्पन्न मंच पर खेले जा सकें तो दूसरी तरफ गांव की चौपाल पर, कस्बे के किसी नुक्कड़ में बिना ज़्यादा खर्च के खेले जा सकें। भाषा के स्तर पर हमें आसान लेकिन भाव और विचार के सम्प्रेषण में समर्थ भाषा का प्रयोग करना होगा। नाटक दर्शक के लिए है इसलिए दर्शक को भुला कर नाटक लिखना शेखचिल्ली की तरह उसी टहनी को काट फेंकना है जिस पर आप बैठे हुए हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि युवा रंगकर्मियों ने जम्मू नगर में हिन्दी नाटक का एक वातावरण बना लिया है; हर साल बहुत से हिन्दी नाटक खेले जाते हैं, दर्शक उन्हें पसन्द करते हैं। ऐसे में नये नाटककार की ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ गयी है। आशा है आप इस ज़िम्मेदारी को समझेंगे और बखूबी निभाएंगे।

———

[अकादमी द्वारा आयोजित नाट्यलेखन कर्मशाला में पठित]

समकालीन हिन्दी नाटक—दो

समसामयिक परिवेश और हिन्दी नाटक

—डॉ० ब्रजराज किशोर

नाटक ही क्यों, साहित्यिक संदर्भों में समसामयिकता अथवा समकालीनता का विशेष अर्थ और महत्व सदैव रहा है। समसामयिकता युग विशेष के प्रतिफलन और जीवनगत वैशिष्ट्य की अभिव्यंजना के रूप में साहित्य को युगीन बनाती है। हर युग का साहित्य समकालीन परिवेश को कृति के विभिन्न स्तरों पर परिलक्षित कर स्वयं को सर्थक बनाता है। इस प्रकार समकालीनता मानवीय संवेदना और उसकी अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट कालगत स्वरूप है।

परिवेश काल विशेष के दृश्यों, व्यक्तियों, स्थितियों आदि के सम्मुचय-बोध का पर्याय है। इसमें पर्यावरण और परिस्थितियों का अंतर्भाव स्पष्ट है। परिवेश में आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी स्थितियों, पर्स्थितियों का समाहार हो जाता है। परिवेश उन विशेष परिस्थितियों को संकेतित करता है जिनके अंतर्गत कुछ विशेष कार्य संपादित होते हैं। परिस्थिति पर्यावरण की अपेक्षा संकुचित होती है और परिवेश पर्यावरण से व्यापक। परिवेश का रचनाकार के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बहुत हद तक व्यक्ति एक पारिवेशिक देन भी है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समसामयिक परिवेश एक विशिष्ट कालखंड के पर्यावरण, भौतिक वातावरण, परिस्थितियों, प्रभावों, प्रेरणाओं आदि का वह सम्मुचय है जिसका सम्बंध किसी व्यक्ति विशेष, समूह विशेष, सामाजिक प्रवृत्तियों, संस्थाओं आदि से होता है, तथा जिसने चाहे-अनचाहे गहन और व्यापक रूप में उनको प्रभावित-प्रेरित किया है।

नाटककार प्रारंभ से ही अपने परिवेश से गहरा प्रभावित होने लगता है। यह प्रभाव उसकी नाट्य-उपलब्धियों को नियंत्रित एवं समायोजित करता है, परन्तु साथ ही नाटककार युगसृष्टा एवं दृष्टा होने के नाते एक विशिष्ट वैचारिक तथा भावनात्मक परिवेश के जनक के रूप में, विद्यमान परिवेश को प्रभावित करता है। नाटककार एक ओर परंपरा से जुड़ा रहकर नवीन प्रयोगों में प्रवृत्त होता है तो दूसरी ओर परिवेश संपृक्त होकर उसमें वांछित परिवर्तन

लाने का प्रयत्न करता है। वह जीवनानुभवों को युगबोध से अलग नहीं रख सकता। समसामयिक जीवन-प्रवाह में वह अपनी नाट्य-गागर डुबोकर भरता है। नाट्यानुभूति परिवेश संदर्भों से संपृक्त होकर ही शाश्वत जीवन-मूल्यों का निर्माण कर सकती है। नाट्य सृजन जीवनानुभूति पर आश्रित वह प्रक्रिया है जिसमें समसामयिक समाज और परिवेश को गहराई से परखने और भोगने की अद्भुत क्षमता होती है। देशकाल और समाज के प्रति दायित्व और उसकी तीव्रानुभूति नाट्यसर्जना का एक प्रमुख तत्व है, और यही तत्व रचना को आधुनिकता प्रदान करता है। इसे हम नाटक का काल या इतिहास-बोध भी कह सकते हैं। समसामयिक स्थानीय परिवेश और लोकतत्वों की सजीवता ही नाटक में प्राण फूंकती है। इसीलिए नाटक में सामयिक चेतना और राष्ट्रीयता के व्यापक संदर्भों को युगीन परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया जाता है। नाट्यकार समकालीन बोध, परिवेश और व्यक्तित्व से कट कर सृजन में प्रवृत्त नहीं हो सकता और न किसी नाट्यकृति का सही मूल्यांकन इन पर विचार किये बिना पूर्ण माना जा सकता है। व्यक्तित्व और परिवेश में स्पष्ट क्रिया-प्रतिक्रिया का क्रम चलता रहता है। रचनागत समकालीन बोध एवं परिवेश का ज्ञान कलात्मक एवं सौंदर्यबोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ आनन्दवृद्धि में भी सहायक होता है।

समकालीन हिन्दी नाटक पारिवेशिक पीड़ा, वैभित्स्य, विघटन, मूल्य-संक्रमण, संवाद-हीनता और अस्तित्व-संकट का प्रामाणिक त्रासद दस्तावेज है। इसमें हमारी समकालीनता का विकृत, विकराल और भयावह चेहरा स्पष्ट उभर कर सामने आया है। विगत दो दशकों में व्यक्ति के केन्द्रच्युत और धुरीहीन होकर अंधी गलियों में परिक्रमित होने का एहसास गहन से गहनतर हुआ है। अपने ही द्वारा उत्पन्न विराट यांत्रिकता और मशीनीकरण के आगे आदमी बौना महसूस कर रहा है। जीवन-प्रवाह से च्युत वह व्यक्ति विशेष न रह कर मात्र जातिवाचक संज्ञा स्त्री, पुरुष, सर्वनाम या संख्या रह गया है। जीवन एक असह्य भार, भद्दा और बेतुका मज़ाक बन गया है। विगत वर्षों में विभिन्न भारतीय राजनीतिक धरातलों पर जो भ्रष्टाचार, लोलुपता, स्वार्थांधता, मूल्यहीनता, संकीर्ण सरोकार, विरूपता आदि जन्मे-पनपे हैं उन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटक को एक विशेष भंगिमा, तेवर, स्वर और विस्तृत आधार भूमि प्रदान की है। आस्था-विश्वास के टूटने और तज्जनित आक्रोश के तीव्र स्वर इनमें स्पष्ट सुने जा सकते हैं।

हमारी मुखौटाधर्मी, निर्वीर्य, नपुंसक समसामयिकता अपनी संपूर्ण विसंगतियों, विडंबनाओं के साथ नए हिन्दी नाटक में विन्यस्त हुई है। नए नाटक ने इन कुत्सित, गर्हित परिस्थितियों को परत-दर-परत नंगा कर उनसे हमारा साक्षात्कार कराया है। स्त्री-पुरुष सम्बंधों में निरंतर बढ़ती हुई अराजकता, संवादहीनता, ठहराव, अजनबीपन, विस्थापन का एक्स-रे कर सूक्ष्म और गहन दृष्टि से देखने-परखने की प्रक्रिया इन नाटकों में है। यही वह प्रस्थान-बिंदु है जो नये नाटक को समसामयिक बनाकर, पूर्व युगीन नाटकों से अलगा कर एक नयी पहचान और अस्मिता प्रदान करता है। यह नाटक सांप्रतिक परिवेश का विभिन्न स्तरों पर साक्षात्कार

करता हुआ आधुनिक हिन्दी नाटककारों की मूल संवेदना में एक तीव्र मोड़ और मौलिक परिवर्तन को संकेतित करता है। इनमें आग्नेय प्रश्न-चिन्हों और समस्याओं से हमारा सामना होता है···विराम-चिन्हों और समाधानों से नहीं। जहां कहीं समस्या के समाधान का प्रयत्न है वहीं नाटक झूठा पड़ता दिखाई देता है। स्पष्टत: यह पुरातन का अपमिश्रण मात्र है, मिलावट है, आरोपित है।

अंधायुग पारिवेशिक अंधकार और अंधेपन के प्रति मानवीय मूल्यों और आस्था-विश्वास के विवश समर्पण की निर्मम व्यथाकथा है। धृतराष्ट्र, गांधारी, दुर्योधन आदि स्वार्थांध उस 'ब्लैक होल' की तरह हैं जिसमें ययुत्सु और विदुर जैसे प्रकाश धर्मी नक्षत्रों की तो बात ही क्या, कृष्ण जैसे महासूर्यों को भी लील जाने की अद्‌भुत क्षमता है। विगत दो महा समर इस सर्वग्रासी अंधकार के अत्यन्त संक्षिप्त संस्करण हमारे सामने हैं। पूर्ण सामूहिक संहार की संभावनाओं के भूकम्प से त्रस्त-अभिशप्त मानव को अब ईश्वर का कोई वरद, अभय हस्त नहीं दीख पड़ता। नीत्शे ने बहुत पहले ईश्वर के मरने की घोषणा कर दी थी और आश्चर्य नहीं कि अब मानव की बारी हो। हिरोशिमा और नागासाकी में खींचे गए गहरे काले हाशियों ने मानवता के चेहरे को इस तरह विकृत और विरूप कर दिया है कि शिनाख्त मुश्किल हो गई है। यह नाटक समसामयिक बहशीपन, पाशविकता, विनाश और भयंकरता के तांडव नृत्य को बेलौस ढंग से बेपरदा करता है। कौन कह सकता है कि बौने मनुष्य की विराट महत्वाकांक्षा, आत्महंता प्रवृत्तियों और विडंबित परिस्थितियों के प्रति जो चेतावनी इस नाटक में दी गई है वह व्यथ नहीं जायेगी। आणविक युद्ध जनित विध्वंस, स्नायविक तनाव, विभीषिका, युद्धोतर गंभीर समस्याओं और तृतीय विश्वयुद्ध की संभावनाओं के चित्रण ने इस कृति को युगीन के साथ-साथ एक शाश्वत रचना बना दिया है। आवरण और मुखौटाधर्मी, असत्य और अर्ध-सत्याश्रित संक्रमित सांप्रतिक संस्कृति का यह त्रासद दस्तावेज हिन्दी नाट्यसाहित्य का एक महत्वपूर्ण पड़ाव कहा जा सकता है।

समकालीन परिवेश की कुत्सा, घृणा, भयावहता, अमानवीकृत स्थितियों और दोगलेपन की पहचान इन नाटकों में है, किन्तु उसे वहन करने की क्षमता का प्रश्न दिल दहला देता है। अवरुद्ध, सड़ांध मारती, दारुण समकालीन जीवन स्थितियों, घर-परिवार और सम्बंधों के विस्थापन, सार्थकता की तलाश में दूसरे से टूट कर तीसरे और चौथे से जुड़ने के प्रयत्न में निरंतर निरर्थक होते जाने की दुर्नियति **आधे अधूरे** का मूल कथ्य है। महेन्द्र-सावित्री और उनकी संतान अशोक, बिन्नी, किन्नी में परस्पर सम्बंधहीनता की खौफनाक स्थितियों के चित्रण द्वारा मोहन राकेश ने समसामयिक पारिवारिक जीवन के मर्मस्थल पर अपनी तर्जनी रखी है। पति-पत्नी अलग हो जाने का संकल्प लेकर भी अलग न रहने को विवश हैं। भीतर से चूर-चूर होकर भी बाहर से साबुत दिखने का प्रपंच हमारी समकालीनता की एक दुर्वह देन है। पहचान और अजनबीपन, आकर्षण और विकर्षण—वितृष्णा की अजीबोगरीब स्थितियों में अवश जीवनभार ढोने के लिए आज का मानव अभिशप्त है। यह नाटक हमारे नरक को परिभाषित,

रूपायित कर जीवन-संघर्ष के जहर को संकेतित करता है। अतः इसमें रसानुभूति नहीं, अपितु कटु यथार्थ के चित्रण द्वारा हमें झकझोर कर सोच में डुबो देने की असामान्य क्षमता है।

गौतम, कविता, संजय और मनीषा (**करफ्यु**) की जीवन-स्थितियां अनेक स्त्री-पुरुषों की जीवनस्थितियां हैं। वे छटपटाकर रह जाते हैं, किन्तु त्राण नहीं पाते। लक्ष्मीनारायण लाल ने उपर्युक्त स्त्री-पुरुषों को जिन जीवन अनुभवों में से गुजारकर सार्थकता के सोपान पर आरोहण करते दर्शाया है वह इस संदर्भ में आरोपित लगता है। उन सबका जीवन सूना और खोखला है। इस शून्यता को भरने का एक ही मार्ग है– सहज मानवीय सम्बंध और स्नेह का मार्ग। नाटक में यथार्थ की प्रस्तुति तो सही है पर समाधान गलत। लगता है जैसे गांठ को सुलझाने के बजाय उसे काट दिया गया हो। रमेश बक्षी की देवयानी (**देवयानी का कहना है**) भी अपने बाहर-भीतर के करफ्यु को तोड़कर वर्ज्य को ग्राह्य एवं मान्य बनाने की तलाश में भटकती एक अभिशप्त आत्मा है। वह मानती है कि जीवन की सार्थकता उसके सहज स्वाभाविक प्रवाह में है। इस सार्थकता की तलाश में वह निरंतर प्रयोग करती चली जाती है और पीछे परंपराओं के मलबे छोड़ जाती है। तीन दिन के दाम्पत्य जीवन में वह तीन बड़े-बड़े ऐसे प्रयोग करती है जिसे पूरा करने में शायद दूसरों को तीस वर्ष लग सकते हैं। विद्रोह की साक्षात् प्रतिमा, छिन्नमस्ता देवयानी सुरक्षा की कैद से असुरक्षा की आज़ादी की तरफ बेतहाशा भागती रहती है और मार्ग में आने वाले अवरोधों, परंपराओं को निर्ममता से ध्वस्त करती जाती है, यहां तक कि ध्वंस ही उसके लिए एक परंपरा बन जाती है। घर को आसमान की तुलना में बहुत छोटा, सम्बंधों को उड़ान की तुलना में निहायत संकुचित और पंख को ज़िंदगी के बोझ से हल्का समझने वाली उन्मुक्त विहाराकांक्षिणी देवयानी में यह सब सम्बंधों की असहजता और संकोच के प्रति एक हिंस्र प्रतिक्रिया मात्र है। उसके अंतस् में एक नीड़ की तीव्र इच्छा दबी पड़ी है, लेकिन बेगानापन, निरंतर भटकाव और सतत प्रयोग की परंपरा ही जैसे उसके जीवन की अंतिम नियति है। पारिवेशिक कैद के विरुद्ध एक विहंगिनी का यह विद्रोह समकालीन व्यक्ति की मुक्ति के लिए छटपटाहट को प्रतिच्छवित करता है।

एक और अजनबी (मृदुला गर्ग) की शानी भी सहज, स्वाभाविक सम्बंधों की तलाश में भटकती एक ऐसी ही नारी है। सार्थकता की इस तलाश में वह एक के बाद दूसरे मोहभंग से गुजरती हुई अजनबीपन के जंगल में तिरोहित होते देखी जा सकती है। सुरेन्द्र वर्मा की सुरेखा (**द्रोपदी**) में स्वप्नभ्रंश का एक और नया क्षितिज उद्घाटित हुआ है। वास्तविक जीवनबोध और यथार्थ का आलेख यह नाटक, मोहभंग की एक भयानक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है जहां एक-एक कर सारे मानवीय रिश्ते बेमानी और बदरंग होते जाते हैं। परिवेश और हालात के बदलाव में वह सब पीछे छूटता जाता है जो मकान को घर और जीवन को जीने योग्य बनाता है। **तिलचट्टा** (मुद्राराक्षस) के देव और केशी के सम्बंधों में यहां तक शीतलता आ गई है कि वे जमकर 'हिमखंड' हो गये हैं। केशी प्रकृत गरमाहट की आकांक्षा में तीसरे आदमी के प्रति समर्पित होती है, किन्तु यहां भी उसे प्रवंचना ही हाथ लगती है। समकालीन जीवन की विसंगतियों ने पति-पत्नी के बीच एक दीवार खड़ी कर दी है। उन दोनों के बीच

जो सहज सामान्य था वह मर गया है। उस रिक्तता को भरने का कोई विकल्प नहीं है। इस निर्विकल्प स्थिति में देव तीसरे व्यक्ति की विद्यमानता के मलवे के नीचे दब कर मर जाता है। श्रौर वह तीसरा आदमी भगौड़ा निकलता है। अतः केशी स्वयं को पहले से भी अधिक दयनीय और दारुण स्थिति में पाती है। परिवेशगत भय, आतंक और घृणा के भावों को यह नाटक सफलता से रूपायित कर सका है। अत्यंत अंतरंग व्यक्ति के पराये होने और पराये और अजनबी व्यक्ति के अंतरंग प्रतीत होने की विडंबना पर आधृत यह त्रासदी घर-परिवार के वातावरण में उग आयी कंटीली झाड़ियों को बखूबी फोवस में लाती है।

अब्दुल्ला दीवाना (लक्ष्मी नारायण लाल) समसामयिक परिवेशगत अराजकता श्रौर वैभित्स्य को बेरहमी से उघाड़कर उससे उत्पन्न अग्नि-प्रश्नों को रेखांकित करता है। अब्दुल्ला जीवन मूल्यों, विश्वासों और आस्था का प्रतीक पात्र है जिसकी हम सबने मिलकर हत्या कर दी है। इस हत्या की चीख संपूर्ण वातावरज में भयावह रूप में छायी हुई है, लेकिन हम हैं कि न सुनने का नाटक कर रहे हैं। वर्तमान प्रजातंत्र, न्यायप्रणाली श्रौर समाज-व्यवस्था की विसंगतियों, अंतर्विरोधों और जीवन के खोखलेपन पर यह नाटक एक तीव्र व्यंग्य-प्रहार करता है। आत्मक्षयी और मूल्यग्रासी युगीन राजनीतिक स्थितियों ने जन-सामान्य को आक्रोश से पागल कर दिया है। सत्तालोलुप और संकीर्ण सरोकारों से संपृक्त राजनेताओं ने देश की जो दुर्गति की है उसने राजनीतिक व्यंग्य नाटकों के लिए एक विस्तृत एवं उर्वर-आधारभूमि प्रदान की है। इन नाटकों में अपने परिवेश की पीड़ा को पहचान कर उसे मूर्त रूप देने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है। **सिंहासन खाली है** (सुशील कुमार सिंह) **बकरी** (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), **एक था गधा उर्फ अलादाद खां** (शरद जोशी), **खेला पोलमपुर** (मणि मधुकर) आदि नाटक भ्रष्ट व्यवस्था और जनता के बीच टकराहट और शासनतंत्र की विकृतिय , विडंबनाओं को नंगा करने के सशक्त नाटकीय प्रयत्न हैं। अंग्रेजों से विरासत में मिली नीति– फूट डालो, विभक्त रखो, उल्लू बनाओ और राज करो का हमारे नेता बड़े मनोयोग से अनुसरण कर रहे हैं।

समकालीन जटिल, प्रश्नाहत, बहुआयामी और बहुस्तरीय मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति में हिन्दी का आधुनिक नाटक पूर्णतः समर्थ है, किन्तु खतरा इस बात का है कि कहीं यह आंतरिक तनाव, संत्रास, भय और आतंक से मुक्ति और पलायन का एक साधन मात्र बनकर न रह जाये। युग-यथार्थ इतना कटु, वीभत्स श्रौर भयावह होता जा रहा है कि नाटककार उससे साक्षात्कार करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा और अलगाव नाटक की कला का एक अंग बनता जा रहा है अतः कहीं-कहीं वह दुर्बोध और संदर्भहीन लगने लगता है। सांप्रतिक परिवेश की भयंकरता एक दुःस्वप्न की तरह है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए नाटक परंपरागत तकनीकों, शैलियों श्रौर युक्तियों को अपर्याप्त पाकर नए-नए, अच्छे-बुरे सभी तरह के, प्रयोग कर रहा है। परिणामतः सम्प्रेषण की अनिवार्य शर्त की अवहेलना देखने में आने लगी है और रचनाकार वैयक्तिक एवं आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। नाटककार यदि अपनी शर्तों पर ही प्रेक्षकों-पाठकों को नाटक में सम्मिलित करने पर आमादा रहता है तो संवादहीनता की

स्थितियां फिर से उभर सकती हैं। वस्तुत: नाटक के क्षेत्र में वाद और कला–आंदोलनों का कोई स्थान नहीं हो सकता। व्यक्ति केन्द्रित और अंतर्मुखी होकर अचेतन में गहरे उतरने के प्रयास में अतियथार्थवादी नाटकों की रचना नाटकों को दुर्बोध बना रही है। नाटकों की लम्बी-लम्बी व्याख्यात्मक भूमिकाएं इस तथ्य की ओर स्पष्ट सकेत करती हैं। स्वप्नों, दिवास्वप्नों, फंतासियों के अतिशय प्रयोग तथा सामूहिक सप्रेषण की कला नाटक के हित में बिल्कुल नहीं है। नाटक दृश्य-काव्य के रूप में सर्वाधिक लोकतांत्रिक कला है, इसे हमें नहीं भूलना चाहिए। सामाजिक दायित्वबोध नाटक का मूल उत्स है और प्रेक्षकों, पाठकों से सीधा संवाद एवं तादात्म्य प्रमुख सरोकार।

— – —

नवगीत

बेहतर होने की उम्मीद में...

- देवेन्द्र कुमार आर्य

जब कुछ कस के बोल दिया करते हैं बाबू जी—
मां की आंखें बुझते अंगारों सी लगती हैं।

शाम कि जैसे काट के रक्खे हुए सेब का रंग
ठण्डी पडती चाय की एक परत जम जाती है
लोगों को घर याद आता है, जब भी थकते हैं।
घर में धुलते-धुलते ज्यों कुर्ते का पीलापन
कुछ ऐसी ही लगती हैं चंदा वाली रातें
और सीप के बटन कि जैसे तारे लगते हैं।

बिल्ली का तेवर अपनाए पिछड़ी भाषाएं
जो उन्नत हैं वे दुनियादारों सी लगती हैं।

तांबे के रंग की खामोशी धुलती जाती है
किसी उजाड़ जगह पर कोई गेट मैन जैसे
ट्रेन चले जाने पर फिर जाके सो जाता है।
चूल्हे के आगे मुंह हाथ में लेके बैठी मां
सो गए होंगे बाबूजी यह सोच के देर से वो
घर आने पर बाबूजी को पढ़ते पाता है।
एक कोठरी लेके सूरज दिन गुजारता है
और हवाएं विघटित परिवारों सी लगती हैं।

दर्जा दो से लेके एम० ए० तक हर जगह यही
लिखा हुआ मिलता है, बाबूजी भी कहते हैं
अंगुली पर आके हर मसला हल हो जाता है।
बेहतर होने की उम्मीद में औरों से लेके
उसके जिम्मे जब भी कोई काम दिया जाता
उसको अपना पढ़ा-लिखा होना खल जाता है।
सुर्ती-रोटी-दाल से कट के लोगों की बातें
या तो ठप्पे सी या अखबारों सी लगती हैं।

———

रिपोर्ताज

सड़क आ रही है···

—ज्योतीश्वर पथिक

एक कठिन चढ़ाई के बाद मैं टीले पर खड़ा हूं—मेरे आसपास ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं जिनके दामन में राजमार्ग पर स्थित रामसू का छोटा सा गांव है। सड़क पर रेंगती हुई गाड़ियां खिलौनों जैसी प्रतीत हो रही हैं, मकान छोटे-छोटे डिब्बों की तरह दिखाई देते हैं और बनिहाल से आती हुई नदी पानी की एक लकीर मालूम होती है।

रामायण में इस प्रदेश का नाम कैकेय-देश था जहां की राजकुमारी भरत की माता कैकेयी थी। रामायण के प्रसंग के अनुसार जब महाराजा दशरथ का देहांत हुआ तो भरत एवं शत्रुघ्न अपने ननिहाल कैकेय देश में थे जहां का राजा अजित था। शायद इसी प्रसंग को जोड़ने के लिये इस गांव का नाम रामसू रखा गया था। वैसे रामबन का नगर भी यहां से २० किलोमीटर की दूरी पर ही स्थित है।

लम्बी चढ़ाई के बाद मेरा सहयोगी बालकृष्ण, कैमरामैन, हांप रहा था।

—यहां अपना बोझ संभालना कठिन है और हम···

—मरे क्यों जाते हो यार। हम बाटू जा रहे हैं, जिसे नील भी कहते हैं। दूसरे सहयोगी सूर्य प्रकाश ने कहा।

हमारे सामने देवी का एक मंदिर था, सोचा; चलकर देवी के दर्शन करेंगे। मगर यहां के कपाट बंद थे सो हम मुड़ गए।

—आगे कितना रास्ता है?

—क्यों थक गए हो ना। बस अब रास्ता हमवार है। आपको इस कूह्‌ल (छोटी सी नहर) के साथ-साथ कोई पांच मील चलना है फिर खेत आ जाएंगे और बस।

हमें सांत्वना मिली और हम आगे बढ़ने लगे! जम्मू से श्रीनगर जाने वाली बल खाती हुई सड़क को हम छोड़ चुके थे। अब हमारे दाईं ओर एक सिमटी सी तंग कूह्‌ल थी और

बाईं ओर गहरी खड़ी ढलवान—चीड़ एवं देवदार के पेड़ अपनी मस्ती में झूम रहे थे। कूह्ल में पानी अभी छोड़ा नहीं गया था अतः हम जहां कहीं रास्ता तंग देखते पांव कूह्ल के अंदर रख देते।

—संभल कर चलियेगा साहब ! सूर्य प्रकाश की आवाज़ ने मुझे सचेत कर दिया—सामने देखा तो एक मरा हुआ सांप पड़ा था।

—यह कूह्ल अभी अभी बनी है साहब, पास ही खड़े एक देहाती ने कहा।

हमने उससे सवाल किया—तुम यहां पर क्या करते हो ?

—हमने इस कूह्ल पर मजूरी की है।

—क्या मिलता है दिन का ?

—बस यही पांच रुपे दिहाड़ी, उसमें से भी साला ठेकेकार पैसे मार लेता है।

—मिस्तरी को क्या मिलता है ?

—उस्ताद छः रुपे लेता है।

—दस बीस मिस्तरी यहां से ले चलिये साहब, शहर में तो लूट मचा रखी है। मज़दूर १०/- रु० से कम पर बात नहीं करता और राज-मिस्तरी तो तीस चालीस से कम पर नहीं मानता।

रास्ते में एक दो जगह पर पंचायत द्वारा बनवाए गए वाटर-टैंक मिलते हैं और हम अपनी प्यास मिटा पाते हैं। फिर कूह्ल समाप्त हो जाती है और हम मक्की के खेतों से होकर गुजरने लगते हैं।

—तुम्हारी जवानी जले…अचानक हमें एक रोषपूर्ण आवाज़ सुनाई देती है।

मैं देखता हूं कि मेरा एक सहयोगी खिसियाना सा होकर चुराया हुआ मक्की का भुट्टा छिपा रहा है।

—माफ करना बीबी ! मैंने उस औरत से क्षमा याचना की तो वह कहने लगी, "पहले ही सूखे ने हमारा सब कुछ तबाह कर दिया है। अबकी बरसात भी नहीं हुई, हम सब भूखों मर जाएंगे।" उस अधेड़ उम्र की काली कलूटी औरत के शब्दों में छिपे दर्द का मर्म मुझसे अनजाना नहीं था।

—भगवान् से प्रार्थना करो बीबी ! मैंने सांत्वना देते हुए कहा।

—अल्लाह भी हम गरीबों की नहीं सुनता। उस औरत ने बेबसी से कहा। उसके चेहरे पर चिंता के भाव गहरे हो गए थे। यह वही लोग हैं जो वर्ष भर में चार मास खेती-बाड़ी करके अपने लिये दो जून की रोटी भी मुश्किल से जुटा पाते हैं, फिर जब वर्षा न हो या ओले पड़ जाएं तो इनकी विपदाओं में वृद्धि हो जाती है। दूर दूर तक फैले हुए मक्की के खेत वर्षा के अभाव में पीले दिखाई दे रहे थे। ऐसे में मैं कुछ सोचता हुआ आगे बढ़ गया और वह औरत भी अंदर चली गई। कुछ देर तक हम खामोशी से चलते रहे।

—आप बुरा मान गए साहब ? मेरे सहयोगी ने क्षमा चाहते हुए कहा ।

—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं । मैंने बात को टालते हुए कहा ।

अंधेरा छा चुका था, लोग धीरे धीरे अपने झोंपड़ों में जा चुके थे । पहाड़ों के पीछे से चमकता हुआ नीला आसमान झांक रहा था । दूर किसी पहाड़ पर स्थित झोंपड़े में कोई अजाना करुण स्वर गूंज रहा था—

छत्तँयो जहाज नीला आसमाना हो,

अज मेरा दिल परेशाना हो,

अर्थात आसमान पर नीले आकाश की छत है । आज मेरा दिल रह-रह कर परेशान हो रहा है । यह परेशान स्वर विरहा में डूबे हुए प्रेमी का था या सूखा पीड़ित निराशा में डूबे हुए किसान का, यह पहेली मेरी समझ में नहीं आ रही थी ।

रात गहरी हो रही थी और हम टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होते हुए बाटू पहुंच चुके थे । चांद अपनी चांदनी छिटका रहा था और हमने स्कूल के एक कमरे में डेरा जमा लिया था ।

—तो आप आखिर चलकर पहुंच ही गए । एक जाना-पहचाना स्वर गूंज उठा ।

—हां, ठाकुर साहब, कुछ ऐसा ही समझ लीजिए । हमने उत्तर दिया ।

—चलो पहले गरम-गरम चाय पी लो, फिर खाना खा लेना !

—हम एक कमरे में चले गए । वहां गैस लैम्प की धीमी-धीमी रोशनी थी । गरम-गरम चाय के घूंटों ने हमारे शरीर में स्फूर्ति भर दी ।

सुबह सवेरे हर दिशा में नई चहल-पहल थी । पूर्व में किश्तवाड़ की पहाड़ियों से सूर्य झांक रहा था और छविकार बालकृष्ण इस दृश्य को अपने कैमरे में समोने में व्यस्त था । यह नील की घाटी थी । दूर-दूर तक पहाड़ों के दामन में झोंपड़े बने हुए थे । अब यहां पर सड़क लाने की तैयारियां की जा रही थीं । बानिहाल से चमलवास तक सड़क आ चुकी है और लोग आंखें बिछाए उस सड़क के यहां तक आने की बाट जोह रहे हैं ।

इन पहाड़ी लोगों के लिये सड़क का महत्व अत्यधिक है । मेरा कार्यालय का एक सहयोगी रशीद प्रायः गाया करता है—

पार धूमे आई बस लारी हो,
असां कीती घर दी तैयारी हो,

जम्मू-श्रीनगर राजमार्ग के निकट वाले क्षेत्रों में इस गीत का एक अन्य रूप भी पाया जाता है—

पार आई बस गड्डी लारी हो,
असां कीती जम्मू दी तैयारी हो ।

सुबह सवेरे हम पहाड़ी टीले से उतरना शुरू हो गए। लोग हमें देखकर हैरान हो रहे थे। मेरे भारी-भरकम शरीर को देखकर किसी को यह विश्वास न होता था कि मैं दुर्गम पहाड़ी यात्रा की यातनाएं सहन कर सकूंगा।

"पहाड़ी के पार के मकान में पीने को दूध मिलेगा", ठाकुर साहिब कह रहे थे। "हम पहाड़ी लोगों की यही गिज़ा है भाई!"

कारवां आगे बढ़ गया और हमने एक दुकान देखकर चाय पीने की ठान ली—

"चाय मिलेगी शाह जी"—हमने दुकानदार से पूछा।

"क्यों नहीं"— शाह जी ने कहा और छोटी-छोटी लकड़ियां मिट्टी के चूल्हे में ठोंस कर आग जलाने लगे।

—शाह जी नस्वार देना मिन्ना। एक बकरवाल का स्वर था यह।

—ठहर चौधरी।

—बकरवाल पास के एक बैंच पर बैठ गया जो सिग्रेट की पेटी को तोड़ कर बनाया गया था।

इन लोगों का भेड़ ही खज़ाना है। इसकी ऊन बेचकर यह अपने गुज़ारे लायक कमा लेते हैं। जिस बकरवाल के पास जितने भेड़ होंगे उसे उतना ही अमीर समझा जाता है। गाएं भी लोगों ने पाल रखी हैं मगर भेड़-बकरी पालना इनकी आय का प्रमुख साधन है।

आठ भेड़ या शठ बकरवाला हो,
डेरा दीता जोड़े मदलाला हो!

इन बकरवालों से ऊन शाह लोग खरीद लेते हैं जो इसे बाज़ार में आकर कई गुना मुनाफा पर बेचते हैं। हमने चाए पी और धीरे-धीरे उतरने लगे। कारवां के अगले लोग पहाड़ की तलहटी के जंगल में खो चुके थे। पीछे-पीछे बकरवाल मज़दूर सामान उठाकर खचरों के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। अचानक एक जानी-पहचानी आवाज़ गूंज उठी।

—तुम यहां टांगें तोड़ने क्यों आए हो भाई?

—बस योंही, मैंने उत्तर दिया।

—तुम इस बारे में क्या लिख सकते हो?

...मैं अर्थपूर्ण नजरों से उसकी ओर देखता रहा था।

—लिखो, आज़ादी के बत्तीस वर्ष के बाद भी लोगों से बेगार ली जाती है। कहने को बहुत कुछ कहते हैं यह लीडर लोग, मगर नहीं...। उसका ज़ोरदार ठहाका वातावरण में काफी देर तक गूंजता रहा। हम अब नील नाले पर पहुंच चुके थे। खच्चरें बोझ उतार कर

विश्राम कर रही थीं। हमने हाथ-पांव धोकर थोड़ा सा पानी पिया। जगह-जगह से नाले का थोड़ा सा पानी मोड़कर पनचक्कियां लगाई गई थीं। उतराई का रास्ता काफी हद तक फिसलन भरा हो चुका था। एक-दो जगह पर मेरा कदम भी डगमगाया मगर साथ की झाड़ियों को पकड़ कर मैंने अपना आप बचा लिया था।

—तुम यहां कब आए? अचानक जिलाधीश श्री सत्य लाल कौल का स्वर सुनाई दिया।

— बस रात को ही; जरा देर से पहुंचे थे।

—मेरे पास आ गए होते। रात गप-शप लगती।

—बस, अब रास्ते में काफी बात-चीत हो सकेगी।

वह आगे बढ़ गए और हम अभी तक सुस्ता रहे थे। सामने बड़े-बड़े पहाड़ निहायत डरावने महसूस हो रहे थे। बस एक सांत्वना थी कि दो-एक मील चलकर पीने को गरम-गरम दूध मिलेगा।

अचानक एक आदमी दीवानावार बोलने लगा था, "आज यहां की किस्मत खुल गई है। हमने कभी नायब तहसीलदार का मुंह नहीं देखा। आज तो यहां डी० सी० साहब आए हैं। हमारा नसीब तो पटवारियों और गिरदावरों के चक्कर में पड़ा है।"

—यहां के लोगों को अपने पिछड़ेपन का बड़ी गहनता से एहसास है। कभी-कभार ही कोई अधिकारी यहां आता है। वरना छोटे-छोटे खड़पंच ही यहां का कारोबार चलाते हैं।

हमने धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। नदी किनारे का सारा क्षेत्र वीरान पड़ा था। लोगों ने बाढ़ इत्यादि से बचाव के उद्देश्य से सुरक्षित जगहों पर अपने झोंपड़े बनाए थे। फिर भी बाढ़ इत्यादि के प्रकोप का इन लोगों को भय बना ही रहता है।

आसमानी जिलमिला तारा हो।
पापी लोग नदिया किनारा हो।

थोड़ी सी बारिश आते ही हर दिशा में जलथल हो जाता है। जमीन बहना शुरू हो जाती है और हज़ारों एकड़ जमीन नदी के प्रकोप की भेंट चढ़ जाती है। यही कारण है कि नदी किनारे रहने वाले लोग अपने आपको पापी समझते हैं।

सर्दियों में जब बर्फ गिरती है तो इन लोगों का घरों से निकलना मुहाल हो जाता है— **धूप समेंती जुल्फी गया धारा हो, ताप करयानस परवरदिगारा हो।** इस क्षेत्र के लोकगीतों में जम्मू की डोगरी, पहाड़ी, सिराजी, गोजरी एवं कश्मीरी का अजीब सा सामंजस्य मिलता है। बानिहाल में पहुंचकर भाषा में कश्मीरी की छाप अधिक मिलने लगती है और रामबन में डोगरी की 'करयानस', 'ताप', 'मंज़' जैसे कश्मीरी शब्दों का प्रयोग यहां के लोकगीतों में अधिक मिलता है। इस लोकगीत में धूप एवं 'ताप' दोनों शब्द एक साथ दो पंक्तियों में प्रयोग में लाए गए हैं।

अब हम उस देहाती मकान पर पहुंच गए जहां हमें दूध पीने के लिये रुकना था। यह एक ज़ैलदार का मकान था। आंगन में और छत पर चार-छः चारपाईयां बिछाई गई थीं। उन पर शहर से लाए गए 'बैडकबर' बिछे थे। नीचे छोटे से पिछवाड़े में तीन-चार गऊएं और कुछ बकरियां थीं। आंगन में लोगों की भारी चहल-पहल थी। ठाकुर साहब कुछ लोगों से बात-चीत कर रहे थे। काफी लोगों ने डी० सी० को घेर रखा था और सूखे की विपदाएं सुना रहे थे। अचानक ठाकुर साहब की आवाज़ गूंज उठी—

'आप साल भर में केवल चार मास काम करते हैं, बाकी आठ मास को आप किस उपयोग में लाते हो।'

सभी लोग ध्यानपूर्वक सुनने लगे।

'फसलों के समय हमारी आंखें आसमान की ओर लगी रहती हैं कि कब वर्षा हो और अगर वर्षा कम या ज़्यादा हो जाए तो हमारी सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है।'

'तो हम कर भी क्या सकते हैं ?' एक अन्य आक्रोशपूर्ण स्वर वातावरण में गूंज उठा।

'बहुत कुछ', ठाकुर साहब ने कहना शुरू किया—आप यहां दस्तकारियां सीखें। घरों में बैठकर बारहों महीने काम करें मगर शेष आठ मास का प्रयोग भी।'

लोग कुछ-कुछ समझने लगे थे। सरगोशियां होने लगी थीं और हम दूध पीकर आगे चलने लगे थे, क्योंकि अभी पोगल पहुंचने के लिये हमें दो पहाड़ और चलना था।

रास्ते के मकानों से औरतें झांक-झांक कर देख रही थीं। लम्बे कद की पतली-पतली पहाड़ी ललनाओं का रंग-रूप ही अनोखा था। हमने किताबों में पढ़ा था कि ईरानी औरतें इसी तरह की खूबसूरत होती हैं। गोरे-चिट्टे रंग की इन ललनाओं की वेशभूषा आधी शहरी, आधी ग्रामीण होती है। इनका अपना ही जीवन है, अपनी ही मादकता और अपना ही आनंद। एक प्रेमी के मन की आकांक्षाएं जब मुखरित होती हैं तो वातावरण गूंज उठता है—

ढक्की चढ़े सरु सफेदा हो,
असां बंदिये तेरियां उम्मेदां हो !

पहाड़ों के आंचल में रहने वाले यह मेहनती लोग जीवन की हर अनुभूति से भली-भांति परिचित हैं।

परियों का देश—पोगल-परिस्तान

यहां पर किसी विशेष राजा का शासन कभी रहा हो इसका पता इतिहास की किताबों से नहीं चलता। १२६१ ई० में किश्तवाड़ के राजा ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया था फिर औरंगज़ेब जब कश्मीर गया तो इसी रास्ते से गुज़रा था। तभी से इस क्षेत्र में इस्लाम के प्रचार की शुरुआत हुई।

पोगल दुर्ग के निशान तो अब कहीं नहीं मिलते। हां ! यहां पर एक मस्जिद एवं मंदिर अवश्य हैं। कहा जाता है कि पोगल के लोग काफी पढ़े-लिखे हैं। यहां के लोगों को

पढ़ने-लिखने का काफी शौक है। स्कूल जाने के लिये इन्हें लम्बी एवं कठिन यात्रा तय करनी पड़ती है। अब भी यहां के स्कूल में काफी संख्या में बच्चे पढ़ते हैं। लकड़ी के सिलंडर का बना पहाड़ी ढोल, बीन एवं शहनाई के अतिरिक्त बांसुरी का संगीत यहां के पहाड़ों में गूंजता रहता है। शादी-व्याह या पर्व-त्योहारों पर यहां संगीत की धारा बहती रहती है।

मेरा सहयोगी बालकृष्ण अपने कैमरे में दूर-दूर तक फैले हुए रमणीय दृश्यों की छवि उतारने में व्यस्त था। दूर से पहाड़ी टीलों से उलझते हुए पोगल नाले का दूधिया पानी लिद्दर या नीरू की याद ताज़ा कर देता है। पहाड़ों के बीच टीन की छतों वाले मकान दूर-दूर तक अपनी चमक बिखेर रहे थे। हम दोबारा उतराई में जाकर नदी की ओर बढ़ने लगे। सामने की चढ़ाई इक खड़ी पगडंडी थी। कारवां के सारे साथी आगे निकल गए और मेरे साथ सिर्फ एक जैलदार रह गया।

'बाबू जी यह गांव के रास्ते बड़े मुश्किल हैं।' जैलदार ने कहा।

'हां भई, मेरी तो प्यास से जान निकल रही है।' मैंने चढ़ाई के दर्मियान में बैठते हुए कहा।

'देखें भला अगले मोड़ के झरने में पानी मिल सकता है।' ···हम चुपचाप कुछ देर तक चलते रहे। जब हम झरने पर पहुंचे तो पानी बिल्कुल खुश्क हो चुका था। प्यास से मेरी जान निकल रही थी। अभी आगे और सीधी चड़ाई थी और काहकूट पहाड़ी के शिखर पर पहुंच कर ही हमें पीने के लिये पानी मिल सकता था। आगे चलने की हिम्मत मुझ में बाकी न रही थी। मैं बैठा कुछ देर तक सोचता रहा। मेरे साथ एक लड़का था, नौजवान हल्की उमर का। दसवीं तक पढ़ा, नौकरी के लिये अर्ज़ी लिए साथ चल रहा था।

'मुझे डी० सी० साहब से लिखवा दो ना'—उसने याचना करते हुए कहा—'वह मुझे मास्टर बना सकते हैं।'

'कोशिश करूंगा,'—मैंने कहा। 'अब तक तो वह काफी दूर पहुंच चुके होंगे।'

'कोई चिंता नहीं, हम भी अभी जा पहुंचेंगे', उसने कहा।

चढ़ाई बहुत दुर्गम थी। आंचलिक भाषा में इसको दंदा या फेरी कहा जाता है। मुझे अपना हैंडबैग उठाना भारी पड़ रहा था। न जाने यहां के पहाड़ी लोग ढेर सा बोझा उठाकर कैसे चलते हैं ?

'कोई गाना सुना सकते हो ?' मैंने लड़के से सवाल किया।

'हां, मैं पहाड़ी गाना गा सकता हूं। क्या तुम समझ सकोगे ?'

'तुम गाओ, बाद में मुझे इसका मतलब बता देना'। लड़का हंसने लगा और उसका स्वर गूंज उठा—

फेड़े, केड़े सुन मेरी नीड़ा हो,
क्यों विस्ता बिल बिच्चा फेरा हो !

× × ×

जेला आवत मैंनू ख्याला हो,

कोरा सा कागज लिखथुथ ज्वाबा हो !

मैं गीतों की इन पंक्तियों के शब्दार्थ से यद्यपि अपरिचित था परन्तु प्रेम एवं नेह की भाषा मूक होते हुए भी बहुत कुछ बता देती है। प्रणय की भाषा सारी दुनिया के लिये एक है, कुछ भी न होते हुए सब कुछ बता देती है।

अब हम चलते-चलते पहाड़ी दंदे के ऊपर आ पहुंचे थे यहां पर कुछ हाटों पर खड़ी गुज्जर एवं बकरवाल युवतियां हमें देखकर चकित हो रही थीं। मैंने वहां पर लगे पब्लिक स्टैंड पोस्ट पर खूब जी भर कर पानी पिया और अपनी प्यास मिटाई। तदुपरान्त मैंने आस-पास नज़र दौड़ा कर अपने सहयोगियों की तलाश शुरू की, मगर वहां कोई नहीं था। वह कब के अहलनवास तक यात्रा के लिये निकल चुके थे। आसमान पर गहरे काले बादल घिर आए थे। ज़ैलदार भी कब का जा चुका था। मैं अकेला उतराई उतरने लगा ताकि बारिश शुरू होने से पहले मैं भी अहलनवास पहुंच जाऊं जहां पर हमें दोपहर का भोजन करना था। अभी कुछ ही दूर चला था कि बारिश ज़ोरों से शुरू हो गई और एक मोड़ मुड़ते ही चलना मुहाल होने लगा। मैंने एक टीले का सहारा लेकर बारिश से बचने का असफल प्रयास किया, मगर ज़ोरों की बारिश से यह सम्भव न हो सका।

अब मैं पूरी तरह भीग चुका था। मैंने अपनी यात्रा जारी रखी और बचता-बचाता गांव तक जा पहुंचा। मेरी हालत देखकर सभी हंस रहे थे। मैंने गीले कपड़े उतार कर अपना तहमद लपेट लिया। मालिक मकान ने तौलिया ला दिया और मैंने अपना बदन सुखाया और जमीन पर बिछी मसनद पर बैठ गया।

अब मेरे सहयोगी भी आ चुके थे।

'आप बहुत नीचे रह गए थे ?'

'हां,' मैंने उत्तर दिया।

तभी खाना आ गया। मोटे बासमती चावल, राजमाश एवं गोश्त के कुछ पीस, नमक कम किन्तु मिर्च अधिक। मगर भूख इतनी तेज़ थी कि कुछ भी सुझाई नहीं दे रहा था। मैंने तेज़ी से खाना समाप्त किया और चाय के बारे में सोचने लगा। थकावट एवं सर्दी से बुरा हाल हो रहा था। कारवां के बाकी लोग सीनाबाती जाने की तैयारी कर रहे थे, मगर गांव छोटा होने के कारण वहां पर इतने लोगों के ठहरने का प्रबंध न हो सकता था और दूसरे रात के समय फिसलन भरी गीली जमीन पर चलना हम जैसे शहरी लोगों के लिये खतरे से खाली न था। अतः हम वहीं ठहर गए। दूर-दूर तक हर दिशा में पहाड़ ही पहाड़ थे। हम वहां के ठेकेदार के एक कमरे में बैठ गए। घर की औरतें अंदर जनानखाने में चली गईं और हम वहां पर बिछी चारपाईयों पर बैठ गए।

सहायता नहीं दी। इसी समय देश में वामपंथी चिंतन को बढ़ावा मिला, नक्सलवादी जैसी विचारधारा और कांग्रेस तक में वामपंथी दल अपनी अपनी सोच से समाजवाद की अपनी-अपनी व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे। इनके परिणामस्वरूप साहित्यकार भी अपने को वामपंथी चिंतन से जोड़ कर गौरव अनुभव करने लगा। साहित्य-जगत में कुछ पत्र-पत्रिकाएं इस वामपथी सोच को अग्रसर करने की दृष्टि से प्रकाश में आयीं ('वाम', 'सनीचर', 'कलम' आदि)। इसके साथ ही १९७४-७५ ई० तक आते-आते राजनीतिक अव्यवस्था भी अपने चरम पर आ पहुंची थी। हड़ताल, जुलूस, घेराव, बंद, तोड़-फोड़, हिंसा दैनिक जीवन के अनिवार्य अंग से बन गए। चरमराती हुई अर्थ-व्यवस्था और राजनीतिक अव्यवस्था से निपटने के लिए २६ जून १९७५ ई० को प्रथम बार देश में 'आपात स्थिति' घोषित की गई। आपात स्थिति की भयावहता और त्रासक स्थितियों से छुटकारा मिला मार्च १९७७ ई० के चुनावों से जिससे कांग्रेस का ३० वर्षीय एकछत्र राज्य समाप्त हुआ। किन्तु 'जनता सरकार' जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को पूर्ण करने में अक्षम और निजी स्वार्थों की संपूर्ति में, क्षणिक तौर पर सही, सक्षम सिद्ध हुई। सामान्य व्यक्ति ने निराशा और अवसाद की इस स्थिति से उबरने के लिए पुनः कांग्रेस और श्रीमती इन्दिरा गांधी को नेतृत्व सौंपा किन्तु उसकी स्थिति जस की तस रही। सामान्य जनता को अपने त्राण का कुछ उपाय दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता। आज व्यक्ति के जीवन में गहरी निराशा और एक विक्षोभ व्याप रहा है। समकालीन कथाकार का यह जीवन-यथार्थ पूरी प्रामाणिकता और गहराई से कहानी में रूपायित हुआ है।

राजनीतिक व्यवस्था बनाम भ्रष्टाचार

आज राजनीतिक परिदृश्य की सबसे बड़ी विसंगति राजनीतिक व्यवस्था की भ्रष्टता है। राजनेताओं का भ्रष्ट-आचरण अपने विविध संदर्भों में हिन्दी कहानी में उकेरा गया है। जन सेवा की आड़ में गुलछर्रे उड़ाते राजनेता की हिमांशु जोशी की 'कोई एक मसीहा' में बखिया उधेड़ी गयी है। ग्राण्ट प्राप्त करने के लिए उन्हें आश्रम की कन्या सावित्री मुक्त भोग के लिए समर्पित की जाती है। विमला शर्मा की 'दौरा' नामक कहानी में राज्यमंत्री इसी प्रकार अपने दौरे के दौरान शिकायत लेकर आई लड़कियों से एकांत में 'फ्री' होकर मिलते हैं। आज कहानी ने समाज के इन छद्मवेशी मसीहाओं/राजनेताओं की नकली खाल को उतार कर रख दिया है। राजनीति की सफलता का राज़ आज गुण्डागीरी रह गया है, गुण्डों और 'गुण्डा संस्कृति' की रक्षा आज राजनेता का धर्म है। इस स्थिति का व्यंग्यात्मक निरूपण महीप सिंह की कहानी 'एक गुण्डे का समय बोध' में प्राप्त होता है जहां गुण्डों के 'एथिक्स' को राजनीतिज्ञों के 'एथिक्स' से ऊंचा सिद्ध करते हुए बताया गया है कि गुण्डे कम से कम अपने साथियों और गुरु से तो दगा नहीं करते पर यहां 'हर चेला गुरु को गुड़ बना कर खुद शक्कर बनने की कोशिश करता है।' "किसी पार्टी के नेता के इशारे पर किसी विधायक को दो-तीन दिन के लिए गायब कर दो और पांच-दस हज़ार रुपये ले लो। दल-बदल की रक्षा करो और उसे उसकी पहली पार्टी के लोगों से बचाओ।" इस तरह के 'सैंकड़ों धंधे' राजनीति की पेशेवर

गुण्डागीरी मे चल रहे हैं जिन्हें कहानी के जग्गू के माध्यम से महीपसिंह ने व्यक्त किया है। यदि कहीं इन गुण्डों से नेता का नाम उछलता दिखायी देता है तो ये उसे गाजर-मूली की तरह कटवा कर किनारे भी लगवा देते हैं, अनय की 'निरर्थक आग' कहानी का कथ्य यही है। इब्राहीम शरीफ की 'ज़मीन का आखिरी टुकड़ा' कहानी का 'इन्वू हरामज़ादा' भी ऐसा ही पात्र है।

आज राजनेताओं ने रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, कोटे-परमिट की लेन-देन की आपाधापी आदि से राजनीतिक वातावरण को बुरी तरह प्रदूषित कर रखा है। कहानीकार की दृष्टि से जीवन-यथार्थ का यह पक्ष भी नहीं छूटा है। अशोक अग्रवाल की 'तंत्र', ध्रुव जायसवाल की 'केवल एक क्षति', श्रवण कुमार की 'सलाख पर घूमता आदमी', काशीनाथ सिंह की 'माननीय होम मिनिस्टर के नाम' आदि कहानियों में राजनीति की अवसरवादिता, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजाबाद आदि की पोल खोली गयी है। 'सलाख पर घूमता आदमी' में आज का युग-सत्य यह बताया गया है कि "किसी एम० पी०, मिनिस्टर को चाचा-ताऊ बना लो और सब अपने आप होता जायेगा।"

'जनता के सच्चे सेवक' कहे जाने वाले 'जन प्रतिनिधि' आज जनता से, जनता की पहुंच से, बहुत दूर हो गए हैं। जो जितना बड़ा जन प्रतिनिधि है, वह जनता से उतना ही अधिक कटा हुआ है। गिरिराज किशोर ने अपनी 'मंत्री-पद' और 'ततैया' आदि कहानियों में इन जन-प्रतिनिधियों की जन-सेवा की सच्चाई को उघाड़ा है। गांधी के देश के ये 'जन-सेवक' गांधी के नाम पर उन्हीं के स्वप्नों और आदर्शों की सरे-आम हत्या कर रहे हैं। मुद्राराक्षस की 'दांत या नाखून या पत्थर' में फंतासी के स्तर पर यह सत्य उजागर किया गया है कि गांधी को इस देश ने चौराहों पर बुत बनाकर खड़ा कर दिया है और उनके 'आदर्शों की निर्मम रूप से उपेक्षा ही की गई है।' कमलेश्वर की 'मानसरोवर के हंस' में सेनापति चाचा के माध्यम से आज की राजनीतिक गलाजत की कलई खोली गई है जिसका मुख्य कथ्य यह है कि जनता हमेशा व्यवस्था द्वारा छली जाती रही है किन्तु आज अंतर यह है कि छलने वाले 'साधु' (नेताओं) का बाना धारण किए हुए हैं। इस प्रकार राजनेताओं के भ्रष्ट आचरण का आधुनिक कहानीकार ने विक्षुब्ध भाव से चित्रण किया है। उनका पतनोन्मुख चरित्र आज कहानी में पूरी तरह रूपायित हुआ है।

चुनाव, कुर्सी, वोट के दलदल में फंसी राजनीति टिकट प्राप्त करने के लिए धरती और आकाश तक के सारे प्रयत्न करती है, फिर चुनाव में किसी भी प्रकार जीत कर कुर्सी और मंत्री-पद हथियाने के हथकण्डे अपनाती है—इन सब स्थितियों को कहानीकार ने अपनी पैनी दृष्टि से कहानी में आंका है। गोविंद मिश्र की 'धांसू' ऐसी ही जीवन-स्थितियों को सामने लाती है। असगर वजाहत की 'मछलियां' कहानी के अभयसिंह ऐसे पेशेवर राजनीतिज्ञ हैं जो किसी भी चुनाव में कभी भी खड़े नहीं होते किन्तु उनके बिना कोई भी चुनाव लड़ा नहीं जाता। ऐसे व्यक्ति जनता और एम० पी० दोनों को धोखा देते हुए अपना उल्लू सीधा करते हैं। प्रदीप पंत

३. वुल्लर झील

घिरा हुआ जल
चारों ओर घूमती काली सड़क की बाहें
गले में डाल
अभी-अभी सोया है
या कि
एशिया का एक नयन
डबडबा कर। मौन
अर्थपूर्ण
रोया है !

———

४. आवाज़ का रोमांस

लाऊडस्पीकर का सहारा पा कर
उठी है आकाश में अज़ान।
कि डल के संध्या-जल पर
निकट की पहाड़ियों के
ठीक समानांतर
उठी है एक ठोस मीनार
और लो !
वह अभी-अभी कांपी है कमसिन-सी
ठंडी झुर्झुरी से…

———

कहानी का संदर्भ

समकालीन हिन्दी कहानी
राजनीतिक चित्रण : प्रामाणिकता का संदर्भ

—डॉ० पुष्पपाल सिंह

आधुनिक हिन्दी कहानी, अपने परवर्ती कथा-दौर में जिसे प्रायः ही 'समकालीन कहानी' के नाम से अभिहित किया गया है, अपने परिवेश के प्रति विशेष जागरूक रही है। आधुनिक कहानी की मूलभूत विशेषता यथार्थ के प्रति उसकी प्रतिश्रुति या प्रतिबद्धता है। आज यथार्थ को सामाजिक और राजनीतिक विभाजन के पृथक-पृथक खानों में नहीं रखा जा सकता। वह आज इस रूप में मिला-जुला है कि यह कहना कठिन है कि स्थिति विशेष के लिए केवल सामाजिक या राजनीतिक कारण उत्तरदायी हैं। आज व्यक्ति के ययार्थ की निर्मिति में सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही स्थितियां उत्तरदायी हैं। यथार्थ के बहुआयामी सदर्भों को अभिव्यक्त करती कहानी में राजनीतिक यथार्थ या जीवन-सत्यों का प्रकटीकरण सहज-स्वाभाविक था। यदि आधुनिक कहानी को राजनीतिक परिवेश के जीवन-सत्य के संदर्भ में विश्लेषित किया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि कहानी में प्रत्येक राजनीतिक घटना, हलचल और क्रिया-कलाप को उसकी पूरी प्रामाणिकता में जिया गया है।

नयी कहानी के कथा-दौर में आधुनिक हिन्दी कहानी में राजनीतिक-चेतना प्रायः दिखाई नहीं देती है। १९५०-६२ ई० के बीच सामान्य-जन की राजनीति में इतनी तीव्र रुचि नहीं थी और न ही वह उनसे प्रत्यक्षतः प्रभावित अनुभव करता था। १९६२ ई० के चीनी आक्रमण ने समस्त देश की चेतना को झकझोर कर जगाया था। १९६५ ई० के भारत-पाक संघर्ष ने इस राजनीतिक चेतना को, राजनीति से सामान्य व्यक्ति के सरोकार को, और भी बढ़ावा दिया था। १९६६-६७ ई० में पड़ा भयंकर अकाल और सूखा तथा उसके पश्चात् जीवन जीने की परिस्थितियों का विषमतर होते जाना, राजनीतिक जीवन में आपाधापी के माहौल में राजनीतिक वातावरण का प्रदूषित होते जाना, देश में केन्द्रीय सत्ता में अनिश्चयकारी स्थितियां और सुदृढ़ नेतृत्व के अभाव ने देश में व्याप्त समस्याओं का समुचित समाधान खोजने में कोई

टेढ़ी-मेड़ी पगडंडी पर हम चल रहे थे। भारी-भरकम शरीर होने के कारण मुझे उतरने में काफी कठिनाई महसूस हो रही थी। दूर नीचे नाला था। पत्थरों से अठखेलियां करता नदी का झागदार पानी मनमोहक प्रतीत हो रहा था।

पगडंडी के बाद रास्ता समतल था। कहीं-कहीं चढ़ाई-उतराई आती थी। मालूम पड़ता था कि यहां पर सड़क बनाने की तैयारियां की जा रही हैं।

अभी ओखराल काफी दूर था। मेरे सहयोगी काफी आगे निकल गए थे मगर रास्ता समतल होने के कारण अब मुझे कोई भय नहीं था। मैं भी धीरे-धीरे रास्ते पर आगे बढ़ रहा था। सामने के पहाड़ों पर बनी छोटी-छोटी झोंपड़ियां बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही थीं। हरे रंग के पेड़ मस्ती में झूम रहे थे। वातावरण में मादकता सी छाई हुई थी—कहीं रास्ते में इक्का-दुक्का दुकान थी। वरना हर दिशा में एकांत ही एकांत—लम्बी समतल पगडंडी को तय करने के बाद ओखराल का गांव आ गया। खाकी रंग की वर्दियों में स्कूल के छोटे-छोटे बच्चे बहुत प्यारे लग रहे थे।

हम एक दुकान पर रुके और मैंने पैंट खोल कर एक देहाती दर्ज़ी को सीने के लिये दे दी। सूरज चाय के बारे में पता करने के लिये चला गया था। बहुत मुश्किल से एक दुकानदार के पास दूध मिला और चाय की प्यालियां आ गईं।

यहां से कुछ ही दूर कूंची का गांव था। रास्ता उतराई का था अतः चलने में हमें तनिक सी भी कठिनाई महसूस नहीं हो रही थी।

कूंची एक खुली वादी में स्थित है। दूर-दूर तक धान के खेत फैले हुए हैं, छोटे-छोटे मकान हैं जिन पर टीन की छतें हैं। दूर से श्वागुन कूह्ल दिखाई देती है। यह वही कूह्ल है जहां से हम कुछ किलोमीटर नील जाते हुए चले थे। यहां के लोगों को खेती-बाड़ी के लिये परेशानी नहीं थी क्योंकि यहां सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध था।

कूंची से कुछ ही दूर ब्लास्टिंग की धाएं-धाएं आवाज़ सुनाई दे रही थी। सड़क बनाने के लिये पहाड़ को काटा जा रहा था। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़क निर्माण का काम काफी जोखिम का होता है। रास्ते में कितने ही पहाड़ों एवं चट्टानों को काटना पड़ता है। परन्तु यह भी सत्य है कि जहां-जहां गाड़ी का पहिया चला जाता है वहां के द्वार नई संस्कृति के लिये खुल जाते हैं।

एक लैंड स्लाईड को पार करके हम बट्रोह गांव में पहुंच जाते हैं जहां पर गाड़ियां खड़ी हैं।

कूंची और बट्रोह।
नई एवं पुरानी संस्कृति।
बीच में लैंड स्लाईड का अंतर है।
और बस—

————

कविताएं

कश्मीर : चार अनुभूति चित्र

—बलदेव वंशी

१. जल-प्रकम्प

बर्फ। हरियाली। पहाड़।
और आस-पास डल झील का जल
रोंगटों पर खेलती शीतल कश्मीरी हवा
शिकारे में झील की संध्या...

और यह क्या हुआ !
कि अचानक जल में कहां से गिरे रोशनी के शहतीर
या कि तल में उठ आये हेम-स्तभ
और दलमल डोलता स्वर्ण-महल !

———

२. अभिलेख

इन ऊंची
अनुगूंजित
ठंडी चट्टानों पर ढंक गया है बर्फ में कुछ
जो निःतान्त मेरा है।
जिसे मेरे लोगों ने
अपनी गर्म सांसों से
पत्थर पर उकेरा है।

———

"आप यहां आराम से रहिये, किसी किस्म की तकलीफ आपको नहीं होगी।" घर के मालिक मुहम्मद सुब्हान ने कहा।

मैंने गर्म-गर्म चाय की फरमाइश की और वह जनानखाने में चला गया। उसके लौटने पर बातचीत फिर शुरू हो गई थी।

—एक बात पूछूं ?

—कहो। सुब्हान ने कहा।

—इस इलाके को परिस्तान क्यों कहते हैं ?

वह कुछ सोच में पड़ गया। शायद हमारे सवाल का जवाब सोच रहा था। हम सब उसकी ओर ध्यानपूर्वक देख रहे थे।

—वह पार का पहाड़ देखते हो ? सुब्हान ने कहना शुरू किया।

—हां।

—उसे हंसराजू पर्वत कहा जाता है। कहा जाता है कि आज से कुछ वर्ष पहले उस पर्वत पर कुछ गडरिये, गुज्जर एवं बकरवाल जब अपने माल-मवेशी लेकर गए थे तो उन्हें वहां पर परियां दिखाई दी थीं। इसीलिये इसको परिस्तान कहा जाता है।

मुझे लगा बात कुछ बनी नहीं। 'कहते हैं काफी देर तक काहकूट और हंसराजू के इन पहाड़ों में परियों का वसर रहा था।' सुब्हान पुनः कह रहा था। 'कम से कम हमारे बुजुर्गों का तो यही यकीन है।'

परन्तु मैं सोच रहा था—क्या यह सम्भव नहीं कि नैसर्गिक वातावरण एवं यहां पर रहने वाली ललनाओं के सौंदर्य से प्रभावित होकर किसी मनचले मुगल सैलानी ने यहां का नाम परिस्तान डाल दिया हो। वैसे मुगल भी यहां पर बहुत कम आए होंगे ; क्योंकि उनके आने की छाप यहां नहीं मिलती। यहां तक कि फ्रैड्रिक ड्यू भी यहां से नहीं गुज़रा। उसका कहना था कि यह केवल श्रीनगर जाने वाले व्यापारियों का रास्ता था और यहां पर माल-असवाब उठाने के लिये कुली इत्यादि मिलना सम्भव नहीं था। जब तक बानिहाल कार्ट रोड नहीं बन गई इस इलाके का कोई महत्व नहीं था। भद्रवाह एवं किश्तवाड़ के राजाओं की आपसी लड़ाईयों एवं भूतकाल में होने वाले संघर्षों की छाप भी यहां नहीं मिलती। कटा-फटा यह इलाका रूप एवं सौंदर्य की अनुपम छटा लुटाने के बावजूद भी गुमनाम रहा।

'यह बहुत सुन्दर इलाका है बाबू,' मुहम्मद सुब्हान कह रहा था।

'हां, वह तो मैं देख चुका हूं।'

'यहां के जंगल बस देखने की चीज़ हैं। सुनने की नहीं। एक बार सड़क आ जाने दो यहां की किस्मत खुल जाएगी।'

'हां', मैंने कहा। मगर साथ ही सोच में पड़ गया।

—सड़क···सड़क के यहां तक आने के लिये वर्षों का समय दरकार है।

—हां, उसने कहा, मगर काम चल रहा है। कभी तो आ ही जाएगी। उसने आशापूर्ण लहजे में कहा।

—आपके पास कंबल है ? मुझे ज़रा सर्दी लग रही है ।

'है, आप कपड़े क्यों नहीं पहन लेते ?'

'वह बारिश से गीले हो गए हैं' – मैंने उत्तर दिया।

'ओह,' वह बात समझते हुए बोला – मैं समझा था कि आपने शायद जानबूझ कर कपड़े उतार दिये हैं। वह भीतर चला गया और धुला प्रेस किया एक कुर्ता ले आया। फिर कंबल भी उसने मुझे ओढ़ने के लिये दिया।

अब रात काफी हो रही थी। हमने खाना खाया और सो गए।

पगडंडियों में खोई नई सुबह की तलाश

सुबह सवेरे हर दिशा में एक अजीब चहल-पहल थी। पक्षियों का कलरव वातावरण में माधुर्य बिखेर रहा था। हम सभी नहाने के लिये एक बावली पर चले गए।

पानी बहुत ठंडा था मगर थकान के कारण हमें नहाने से भारी राहत महसूस हो रही थी।

पहाड़ी के दामन में यह बावली ग्रामीण वास्तु कला का एक अजीब नमूना थी। अंदर पुरानी हिन्दु-मूर्ति कला का एक नमूना था। मालूम यह पड़ता था कि यह किसी पुराने राजा के समय की स्मृति है।

पनिहारनें पानी भरने के लिये आई हुई थीं। गोरा-श्वेत रंग, गठा बदन एवं कानों में पड़े सोने के आभूषणों से गांव की धनाढ्यता का परिचय मिलता था। दूर पर चंद दुकानें थीं। जिसे यहां के लोग बाज़ार कहते थे।

पूर्व में किश्तवाड़ की पहाड़ियों से सूर्य झांक रहा था और नहाने के बाद उजली-उजली धूप बहुत सुहावनी महसूस हो रही थी। हम दूर पार तक फैले पहाड़ी नालों का नज़ारा देखते रहे। सूर्य रात में भीगे हुए कपड़ों का मज़ाक उड़ा रहा था —

'साहब, आपकी तो पैंट फट गई है।'

'अच्छा', मैंने कहा—'चलो कोई बात नहीं।'

'आप भी क्या याद करेंगे, बाटू, पोगल, एहलवास और सीनाबाती। कहां-कहां की खाक छानते फिरे।'

बालकृष्ण कैमरे से चित्र उतारने में मग्न था। वातावरण की नैसर्गिकता से सभी मंत्र-मुग्ध थे। जी चाहता था कि हम यहीं के हो रहें।' मगर नहीं अभी यात्रा बाकी थी, हमें आगे चलना था।

हमने वापस आकर सामान समेटा। सुब्हान ने हमारे लिये चाय एवं नाश्ता तैयार करवाया था। हम बेचारे पर मेहमान-नवाज़ी का अधिक बोझ नहीं डालना चाहते थे। मगर वह नहीं माना। चाय पीने के बाद हमने उससे विदा ली और बाहर के पठार पर आ गए। सामने बिजली का ट्रांस्मीशन टावर खड़ा किया जा रहा था हम धीरे-धीरे पठार की ढलवान पर चलने लगे।

की 'आम आदमी का शव' में प्रदेश के मुख्यमंत्री इन्हीं जोड़-तोड़ों में हैं कि वे पार्टी के खतरनाक असंतुष्ट नेताओं से कैसे त्राण पायें। मुख्यमंत्री का यह कथन वस्तु-स्थिति की प्रामाणिकता को सिद्ध करता है, "ये लोग हमें हटाना चाहते हैं। इनके अगुआ पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष और महामंत्री हैं। ये लोग हमें हटा कर दूसरी सरकार बनाना चाहते हैं। हम इन्हें सीधे रास्ते पर लायेंगे।" आधुनिक हिन्दी कहानी में मात्र इन स्थितियों का यथावत् निरूपण ही नहीं हुआ है अपितु उनकी प्रस्तुति इस रूप में हुई है कि वे लेखकीय सोच का परिचय देकर पाठकीय चेतना को जगाती हुई इस भ्रष्ट व्यवस्था की गलाज़त को दूर करने की एक नयी दृष्टि प्रदान करती हैं। अपने इसी रूप में ये कहानियां समाचार-पत्रों में छपी राजनीतिक घटनाओं की 'रिपोर्टिंग' से अलग अपनी साहित्यिक गरिमा स्थापित करती हैं। इन कहानियों का रचनाकार सामाजिक चिंता से जुड़ा हुआ है जिसका प्रमाण यह है कि कथाकार ने भ्रष्ट-व्यवस्था के प्रति अपने तीव्र रोष का प्रदर्शन किया है। गोविंद मिश्र की 'कचकौंध', शरण बंधु की 'कुत्ते', पृथ्वीराज मोंगा की 'कांचघर' आदि कहानियों में इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति तीव्र रोष के दर्शन इस रूप में होते हैं कि उनके पात्र इस देश में रहने तक से घृणा करते हैं। वे 'ऊपर से लेकर नीचे तक सारी' भ्रष्ट व्यवस्था को 'पेट्रोल डालकर फूंक देने योग्य समझते हैं' (कांचघर)।

वर्तमान राजनीतिक परिवेश का सबसे भयानक और क्रूर यथार्थ आये दिन निकलने वाले जुलूस, हड़तालें, विभिन्न बंद, फैक्ट्रियों, ट्रामों, रेल, बस, प्रांत (बंगला बंद, आसाम बंद आदि), देश बंद (भारत-बंद), तोड़-फोड़ और हिंसा की अन्य कार्रवाइयां हैं। इन स्थितियों ने देश की व्यवस्था और कलाकार के मानस को भी झिंझोड़ा है। कथाकार इन स्थितियों का तटस्थ भोक्ता मात्र नहीं है अपितु अपने सर्जनात्मक दायित्व के साथ वह इन्हें अपने लेखन में जीता है। जुलूस, हड़ताल या बंद मुख्यतः राजनेता अपने न्यस्त स्वार्थों के लिए कराते हैं। 'दांत या नाखुन या पत्थर' (मुद्राराक्षस) का मुख्यमंत्री इन्हें अपने विरोधियों के खिलाफ तो अस्त्र रूप में आयोजित करता है किन्तु जब स्वयं उनके विरुद्ध जुलूस और प्रदर्शन होता है तो वे बौखला जाते हैं। हृदयेश की 'गुंजलक' में सामान्य व्यक्ति का क्रोध जुलूस और हड़ताल के रूप में इसलिए फूटता दिखाया गया है कि उसे जीवन जीने की 'आवश्यकताएं' (नैसेसटीज़) भी उपलब्ध नहीं हैं। मुद्राराक्षस की 'निहत्थे' में भी जुलूस और प्रदर्शन का कारण ये आवश्यकताएं ही हैं। रमेश गुप्त की 'चूहेदानी' में भी देश में व्याप्त यही आतंकपूर्ण माहौल साक्षात होता है। जुलूस में सामान्य व्यक्ति की सही आवाज़ तो दब कर रह जाती है, इस तथ्य को स्वीकृति मिली है माहेश्वर की कहानी 'वे पहचानते हैं' में। इस कहानी में व्यंग्यात्मक स्तर पर यह अभिव्यंजित है कि सामान्य आदमी के पक्षधर 'लाल झंडों' आदि के जुलूस सामान्य व्यक्ति की हित-चिंता का व्यर्थ ही दम भरते हैं, अन्यथा तो ये सामान्य आदमी की 'काली कलूटी देह पर अनगिनत खरोंचों और घावों के निशान' छोड़ जाते हैं। सुधा अरोड़ा ने कलकत्ते के संदर्भ में वहां की अशांत स्थिति का चित्रण 'दमन चक्र' और 'स्वप्न जीवी' जैसी कहानियों में किया है। 'यह शहर कभी शांत नहीं रहता। रोज़ तोड़-फोड़, लड़ाई-झगड़ा, दंगा-फसाद, निठल्ले लोग

हैं। काम न धाम, ईंटें चलाते रहते हैं। आदमी कुछ कर ही नहीं सकता। कॉलिज बंद, स्कूल बंद, आफिस बंद...।' सिद्धेश की 'शहीद', सतीश जमाली की 'सत्ताधारी' आदि कहानियों में भी देश के इसी त्रासक वातावरण की छवि मूर्त्त हुई है। फूलचंद 'मानव' की कहानी 'अपने-अपने पोस्टर' का भी मूल स्वर यही है।

इन जुलूसों, बंदों और हड़तालों में छात्रों को जिस रूप में इस्तेमाल किया जाता है, उनकी जो भूमिका तोड़-फोड़ की कार्रवाइयों में होती है उसको भी 'आंदोलन' (कान्हजी सिंह तोमर), 'चुनौती' (सतीश जमाली), 'अपना दुश्मन' (माहेश्वर), 'अपराध' (संजीव) आदि कहानियों में बड़े विस्तार से गहराई में जा कर देखा गया है। इनके अतिरिक्त हेतु भारद्वाज की 'इमारत', विजय चौहान की 'रवि-शशि', सुरेश सेठ की 'हड़ताल' आदि कहानियों में इस युवा आक्रोश और छात्र-अनुशासन-हीनता का रूप देखा जा सकता है।

आपात काल (इमरजैंसी) भारतीय इतिहास की ऐसी ताज़ा घटना है जिसने कलाकार के मानस को बहुत गहरे रूप में प्रभावित किया था। डी० आई० आर० तथा मीसा का मनमाने ढंग से प्रयोग, नौकरशाही और अफ़सरशाही की मनमानी, पुलिस का आतंक, नसबंदी कराना, अभियान में हुई धर-पकड़, अविवाहित किशोरों और वृद्धों को भी पकड़-पकड़ कर नसबंदी, रास्ते चलती बसों का मुंह थाने और फिर अस्पताल की ओर कर देना, सरकारी कर्मचारियों की वार्षिक वेतन-वृद्धि को परिवार-नियोजन के केस लाने से जोड़ना, व्यक्तिपूजा और शासकीय वंश की विरुदावली गाना, सरकारी नीति के सूत्रों का पारायण, समाचार-पत्रों की प्रवचनकारी भूमिका और बारह पृष्ठों में से छः-सात पृष्ठ सरकार की स्तुति और व्यक्ति-पूजा को समर्पित, रेडियो और टी० वी० का खबरों को रंग देना आदि ऐसे कृत्य थे जिन्होंने भारतीय मानस और कलाकार की चेतना को झकझोर कर रख दिया। हम यहां उन साहित्यकारों और रचनाओं पर विचार नहीं करेंगे जिन्होंने आपात काल में 'अनुशासन पर्व' के गीत गाये और उसके पश्चात् उसकी निंदापरक रचनाएं प्रस्तुत कीं। निष्ठावान साहित्यकारों ने आपात स्थिति के दौरान और बाद में भी उन स्थितियों के प्रति 'रिएक्ट' करते हुए कुछ अत्यंत सशक्त रचनाएं दीं। महीपसिंह की 'कहानी एक प्रभावशाली व्यक्ति और चार मुर्गों की', 'निशाना', 'मौत का एक दिन' आदि में आपात कालीन विसंगतियों और दहशत को सशक्त रूप में चित्रित किया गया है। सुरेश सेठ की 'भवदीय', गोविंद मिश्र की 'स्वर-लहरी' और 'सिलसिला', कृष्ण भावुक की 'प्रजा की वापिसी ; काशीनाथ सिंह की 'मीसा जातकम्' आदि 'इमरजैंसी' के जीवन-यथार्थ को चित्रित करने वाली सशक्त कहानियां हैं।

आपात स्थिति के बाद 'जनता सरकार' ने जनता की आशा-आकांक्षाओं को जो बुरी तरह तोड़ा, उसे भी कहानीकार ने वाणी दी है। रमेशचन्द्र शाह की 'रामशिव बाबू' कहानी के रामशिव बाबू को बाज़ार-भाव और प्रशासकीय अव्यवस्था से भारी शिकायत है। उसे लगता है कि जनता पार्टी को वोट देकर कहीं उससे बहुत भारी भूल हो गई है, "और दो जनता पारटी को भोट", "नहीं कुंजड़िन नहीं! ...मैंने भी जनता पार्टी को ही भोट दिया था। उस दिन मैं सुबह पांच बजे ही उठ गया था। और छः बजे नहा-धो के तैयार हो गया

था।" इस प्रकार सामान्य व्यक्ति ने पूजा जैसी निष्ठा से जनता पार्टी को शासन दिया था किन्तु उसके निकम्मेपन ने सामान्य व्यक्ति का जीवन और भी दूभर कर दिया। इस वस्तु-स्थिति को कहानीकार ने पूर्ण निष्पक्षता से कहानी में उकेरा है।

भारत-पाक विभाजन की विभीषिका पर भी हिन्दी में बहुत सशक्त कहानियों की रचना हुई है। भारतीय इतिहास की इस महत्वपूर्ण घटना को लेकर लिखी गयी कहानियों का अध्ययन एक स्वतंत्र लेख का विषय है, इसलिए हम यहां इससे जुड़ी दूसरी समस्या हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक संघर्ष पर लिखी गयी कहानियों की चर्चा करेंगे। आये दिन देश में मुरादाबाद, सम्भल, चंदौसी, अलीगढ़, बरेली, गया, भिवण्डी, जमशेदपुर आदि स्थानों पर होते सांप्रदायिक संघर्ष इस बात को पुष्ट करते हैं कि एक पाकिस्तान बनकर हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष की समस्या सुलझ नहीं गयी है। अभी यहां न जाने 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) बनने हैं। कमलेश्वर की इस कहानी में इस सांप्रदायिक मनोवृत्ति पर तीव्र कुठाराघात किया गया है। 'भरथरीनामा' लिखने वाले मुसलमान ड्रिल मास्टर बन्नो के पिता और मंगल के दादा के आत्मीय-व्यवहार द्वारा पाकिस्तान बनने के निर्णय को बिलकुल बेमानी सिद्ध करते हुए दर्शाया गया है कि मानवीय करुणा, दया, ममता को सांप्रदायिकता की तंग दीवारों में कैद नहीं किया जा सकता। शीला रोहेकर की कहानी 'दंगा' में अहमदाबाद नगर की पृष्ठभूमि पर सांप्रदायिक दंगों में बलात्कार जैसे अमानुषिक कृत्य का वर्णन कर सांप्रदायिकता की भावना को हिटलरी नृशंस अत्याचारों के समान घृणित बताया गया है। महीपसिंह की (बिलकुल ताज़ा) कहानी 'सहमे हुए' में अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर-नवम्बर १९८० में मुरादाबाद, चंदौसी, बरेली, आदि में हुए सांप्रदायिक दंगों का प्रामाणिक वर्णन है। इस कहानी में विभिन्न कोणों से इस सांप्रदायिक समस्या को जांचा-परखा गया है। कहानी केवल हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को ही नहीं अपितु शिया-सुन्नी संघर्ष और अकाली-निरंकारी संघर्ष को भी चित्रित करती हुई देश में फैली फिरकापरस्ती को गहरी सामाजिक चिंता से देखती है।

उपरिलिखित विश्लेषण से सुस्पष्ट है कि राजनीतिक परिवेश में जो भी महत्वपूर्ण घटनाएं घटती हैं, यदि वे मनुष्य के जीवन-यथार्थ को प्रभावित करती हैं, तो निश्चय ही कहानीकार उन्हें संवेदनात्मक स्तर पर जीता है। वस्तुतः कहानी अपनी इस भूमिका में तत्कालीन जीवन का 'इलैक्ट्रिक कार्डियोग्राम' (इ० सी० जी०) सिद्ध होती है जिसमें परिवेश की घटित घटनाएं मानवीय संवेदना के स्तर पर अंकित होती चली जाती हैं। यदि १९८० ई० के अगस्त-सितम्बर, अक्तूबर-नवम्बर में देश में स्थान-स्थान पर दंगे होते हैं तो उन्हीं दिनों उसका प्रभाव कहानी में देखा जा सकता है। महीपसिंह की कहानी 'सहमे हुए' 'सारिका'—दिसम्बर—१, में प्रकाशित हो जाती है, कहानी लिखी गई होगी एकाध माह पूर्व ही। आपात काल से पूर्व राशन की लम्बी कतारों, पुलिस-तानाशाही, जुलूस-हड़ताल आदि हिंसात्मक घटनाओं, आपात कालीन जीवन-स्थितियों, उसके बाद मोह-भंग आदि को कहानीकार की संवेदना ने फौरन ही पकड़ा है। अपने इस गुण के कारण कहानी तत्कालीन जीवन-स्थितियों का प्रामाणिक दस्तावेज़ बन जाती है।

—

दो कविताएं

—पृथ्वीनाथ मधुप

नानी की कहानी का सच

आज वह
मकानों,
दुकानों
और कुर्सियों पर बैठा है
लगाता है गश्त—
सड़कों पर
हवाओं में उड़ता है
चीरता है समुद्रों के सीनों को।
अब—
उसके होठों पर
बासी खून लेप की—
कहानी नहीं
उपन्यास-दर-उपन्यास हैं——
बहती धाराओं के—
टटके रक्त को !
(कोई देखे तो सही !!)

भीड़—
अन्तरिक्ष को भेजती है—
उसके जयकारे
शहर—
अभिनन्दन-ग्रंथ भेंटते ;
तलवों में बिछा देती हैं—
सर्वोच्च डिग्रियां—
यूनिवर्सिटियां !!

अब वह
बीहड़ों,
मसानों
बियाबानों में नहीं बसता
न ही
दिखता है
घुप अन्धेरों में ही !
'एक दिन आयेगा वह
पहन इनसानी खाल
दिन के उजालों से
न होगा/उसे कोई भय,
होगा यह हाल,
गति उसकी न होगी मन्द
घूमेगा स्वच्छन्द
सर्वत्र होगा/उसी का राज
और उसी को
पूजेंगे हम।'
नानी की कहानी में
कितना है दम !!!
—सोचता हूँ आज।

खुली आंख की दास्तां

एक सपना
पिता ने देखा
खिला गुलाब हुआ
सुन/चेहरा मां का।
परतो में
होठों की
चमेली की ढेर सी कलियां—
लगी पा
मेरी आंखों ने
व्यक्त नहीं किया —
अचम्भा :
अबोध बालक था।

देख रहा मैं भी,
लांघ/देहरी—
तीन-तीन दशकों की,
कुर्सियां ऊंची
चौड़ो-चपाट—
नागफनी
जिन पर उगी
बोझ तले पायों के
पीड़ा कराह रहो
उखड़े गुलाब, चमेली की।
पर,
यह सब नहीं सपना,
खुली आंख की है—
दास्तां, :
हूं अब—
हो चुका—
बूढ़ा युवा।

लोक सम्पदा

पर्वतीय लोक धर्म

—डॉ० प्रियतम कृष्ण

धर्म का दार्शनिक अथवा तात्विक स्वरूप चाहे कुछ भी हो, परन्तु लोक में धर्म का अर्थ है, वह विश्वास और क्रिया पद्धति जिसे हम दैनिक जीवन में आध्यात्मिक सन्तुष्टि (?) हेतु अपनाते हैं। सम्भवतः इसी लिए धर्म की व्याख्या करते समय किसी ने कहा है कि धर्म वह है जो धारण किया जाए।

'लोक धर्म' और 'शिष्ट धर्म' में बड़ा अन्तर है। 'लोक' आदिम अवस्था के अधिक निकट होता है और 'शिष्ट' सुनिश्चित कारणों से प्रतिपादित संस्कारों के! इसी से लोक धर्म में, शिष्ट धर्म की अपेक्षा, रूढ़ी अन्ध-भक्ति, शंका-जन्य-भय इत्यादि आदिम प्रवृत्तियों की मात्रा अधिक रहती है। पर्वतीय क्षेत्र के लोक धर्म में लोक धर्म और शिष्ट धर्म, दोनों के तत्त्वों का समावेश होता है परन्तु फिर भी इसमें रूढ़ी और अध-भक्ति की मात्रा ही अपेक्षाकृत अधिक देखने को मिलती है। प्रतिपादित शिष्ट देवों में शिव और शक्ति की उपासना विविध रूपों में प्रचलित है। लोक देवों में नाग देवों, क्षेत्रीय लोक देवों और आसुरी लोक देवों की भी प्रतिष्ठा है। ऐसे सभी लोक आराध्यों और उनकी पूजा-उपासना के विचित्र स्वरूपों का विवरण ही यहां दिया जा रहा है।

सव प्रतिष्ठित लोकदेव

शिव पूजा—वैसे तो शिव पूजा का प्रचलन सारे भारत में है, जहां देवमन्दिरों में शिवलिंग अथवा शिव मूर्ति की पूजा होती है; परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर शिव पूजा का उल्लेख वेदों अथवा उपनिषदों में सम्भवतः उपलब्ध नहीं होता। इसी कारण कई विचारकों का मत है कि शिव आर्यों के देव न होकर यहां के मूल निवासियों के ही देव रहे होंगे जिन्हें कालान्तर में, यहां बस जाने के उपरान्त आर्यों ने भी, अपने आराध्य देव के रूप में ग्रहण किया होगा। शिव को गिरीश कहा गया है; शिव का विवाह भी पर्वत पुत्री से ही हुआ था, और पर्वतीय लोकगीतों में शिव विवाह का अत्यधिक रोचक विवरण भी मिलता है। समस्त पर्वतीय

प्रदेश में नेपाल से कश्मीर तक शिव पूजा का अत्यधिक प्रचलन है। दक्षिण भारत में भी शिव पूजा का महत्त्व रहा है ; इन कारणों से इस धारणा को बल ही मिलता है कि शिव पूजा का, लोक धर्म के अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कश्मीर को शैवमत का केन्द्र माना जाता है। शिव पूजा के विभिन्न स्वरूपों में—जिन का यहां विकास हुआ, और जिन्होंने सम्भवत: यहां से प्रस्थान कर निकटवर्ती और दूरस्थ पहाड़ी क्षेत्रों को भी प्रभावित किया—हमें मध्ययुगीन नाथ पंथ की वाममार्गी विचारधारा की भी कुछ छाप देखने को मिलती है।

शिष्ट समाज में शिव पूजा चाहे शिव मन्दिर में पूजा अथवा शिवलिंग पर जल चढ़ाने की क्रिया के रूप में प्रचलित हो परन्तु पर्वतीय लोक धर्म के रूप में इसका स्वरूप, लोक जीवन में प्रचलित अनेक विश्वासों, अनुष्ठानों, त्योहारों और यात्राओं के रूप में मिलता है। यथा—

नियमित त्योहार :—

(क) हेरथ—शिवरात्री शब्द का ही भ्रष्ट रूप है। सं० 'श' ध्वनि का 'ह' में परिवर्तन कश्मीरी में मिलता है। इस दिन कश्मीर में शिव के भैरव रूप की पूजा की जाती है और यह कश्मीरी पंडितों का सबसे बड़ा त्योहार माना गया है। मांस, मत्स्य का अत्यधिक प्रयोग भी इस दिन कश्मीरी पंडितों के यहां ही होता है।

(ख) शरेइत—शिवरात्रि अथवा हेरथ का ही एक रूप है जो पाडर के पर्वतीय क्षेत्र में मनाया जाता है। रात्रि जागरण और कीर्तन इस त्योहार की विशेषता है।

अनुष्ठान :—

शिव से सम्बंधित अनेक छोटे बड़े अनुष्ठानों का प्रचलन पर्वतीय क्षेत्र में सर्वत्र देखने को मिलता है। इनमें से कुछ उल्लेखनीय अनुष्ठानों के नाम इस प्रकार हैं—पट्ल पूजा, खडाह, प्याला, नवाला, गुस्सेतन, बगनी, धणचक्क, शंखढाल। इन सभी का सम्बंध शिवपूजा से ही है।

देवालय :—

पर्वतीय क्षेत्र में शिव मूर्ति और शिवलिंग से सम्बंधित अनेक छोटे बड़े देवालय सभी ठौर मिलते हैं। बसोहली, भद्रवाह और किश्तवाड़ के शिव मन्दिरों के साथ कुछ ऐतिहासिक घटनाएं जुड़ी बताई जाती हैं।

यात्रा :—

पर्वतीय क्षेत्र में शिव से सम्बंधित स्थानों की यात्राओं का प्रचलन सर्वत्र व्याप्त है। कश्मीर में अमरनाथ, भद्रवाह में कैलाश के शिवकुण्ड या बासकुण्ड, चम्बा में मणिम्हेश, चनैनी में शुद्ध महादेव, रियासी में पौनी-अघार की शिव गुफा, पुंछ में बूढ़ा अमरनाथ इत्यादि की शिव यात्राएं सर्वविदित हैं।

नामकरण :—

पर्वतीय लोक समाज में शिव निम्नलिखित लोकनामों से जाने जाते हैं—

शामी – शमन (शांत, दूर) करने वाले ।

धूड़ू —धूल रमाए हुए ।

भोले – सहज प्रसन्न होने वाले । माह्‌देव, शेम्भू, शिब (शिव) इत्यादि

गद्‌दी देव—गद्‌दियों के कुल देवता ।

शक्ति पूजा

शिव पूजा के अनुरूप ही, पर्वतीय लोक धर्म में शक्ति पूजा का भी अत्यधिक प्रचलन है। देवालयों और देहरियों के रूप में तो उनकी संख्या और भी अधिक है । परन्तु क्षेत्र के लोक जीवन में शक्ति सम्बंधी अनुष्ठानों और त्योहारों का कोई स्वरूप उपलब्ध नहीं होता । पर्वतीय क्षेत्र में शक्ति उपासना का क्रम निम्न प्रकार से देखने को मिलता है—

देवालय—पर्वतीय क्षेत्र में हमें शक्ति सम्बंधी देवालय दो रूपों में मिलते हैं :—

(क) **ग्राम से बाहर** किसी एकान्त स्थान अथवा किसी जंगल में, अथवा किसी पहाड़ी की चोटी (अधवार) पर स्थित देवालय ; जहां वर्ष में किसी निश्चित तिथि को कोई बड़ा मेला लगता है । ऐसे मेलों में देवी के श्रद्धालु-भक्त दूर-दूर से, किसी मनौती के पूर्ण होने पर अथवा मनौती मांगने हेतु आते हैं । वन के एकान्त प्रांगन में स्थित होने के कारण इन्हें 'वनी' (वन-स्थली) भी कहा जाता है ।

(क) **ग्राम के भीतर** ही कोई देवी पूजक (चेला) अपने घर के किसी एक कमरे में देवालय की स्थापना करता है जहां पास पड़ोस के ग्रामीण जन अपने रोग-शोक सम्बंधी कारणों को पूछने के लिए तथा उनका समाधान ढूंढने / खोजने के लिए उसके पास आते हैं और देवी-पूजक अथवा चेला सप्ताह में एक निश्चित दिन (मंगलवार, बृहस्पतिवार अथवा शनिवार) पूजा के उपरान्त देवी के प्रभाव में आकर, लगभग अर्ध-चेतनावस्था में उनके प्रश्नों के उत्तर देता है ।

पर्वतीय क्षेत्र में शक्ति के जिन रूपों की उपासना देखने को मिलती है वे इस प्रकार हैं :

१. **चोण्ड**—चंडिका माता ; इसके देवालय पर्वतीय क्षेत्र में यत्र तत्र सर्वत्र मिलते हैं।

२. **सीतला**—सीता अथवा चेचक रोग से सम्बंधित देवी ।

३. **ज्वाला**—ज्वालामुखी अथवा गर्म चश्मे (पाडर इत्यादि) से सम्बंधित देवी ।

४. **भद्रकाली**—भद्रकालिका । भद्रवाह में इस देवी की कई देहरियां हैं ।

५. **र्‌यूशशिर तथा शिरथल**—इन दोनों स्थानों पर शारिका देवी के मन्दिर हैं । रह्‌ के वृक्षों से आवेष्ठित चोटी पर स्थित होने के कारण रह्‌यूशर और श्री स्थल से शिरथल नाम पड़ा है । एक विचार के अनुसार बलावर का सुकराला देवी स्थान भी (शारिका+आलय) का ही परिवर्तित रूप है ।

यात्रा—पर्वतीय क्षेत्र में शिव स्थानों की यात्राओं के अनुरूप ही देवी के देवालयों, जो अधिकांश ऊंची अधवारों पर स्थित हैं, की यात्रा का प्रचलन अधिक रहा है। विगत समय में इन देवालयों में पशुबलि का प्रचलन जोरों पर रहा है, जो अब समाप्तप्राय होती जा रही है।

नाग पूजा

वैसे तो विश्व के विभिन्न भूखण्डों में, प्राचीन काल से ही नाग पूजा के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। मिस्री. रोमी, चीनी और जापानी धर्म-सम्वंधी वार्ताओं में नागों तथा सर्पों का उल्लेख बताया जाता है। भारत में नाग पूजा का प्रचलन मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा सभ्यता से सम्बंधित बताया जाता है। रामायण तथा महाभारत और बौद्ध धर्म सम्वंधी वार्ताओं में भी इसका उल्लेख है। ह्यूनसांग तथा अलबरूनी ने मध्ययुगीन कश्मीर के कई जलस्रोतों के नागों से सम्बंधित होने की वात कही है। सांगली महाराष्ट्र में आज भी नागपंचमी के दिन नागों को टोकरी में लाकर पुष्प पूजित कर दूध पिलाने की बात सुनने को मिलती है। इस प्रकार नागपूजा की परम्परा काफी पुरानी जान पड़ती है। नागों की देवों के रूप में पूजा के कई मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं। लोक मानव स्वभाव से ही सदा संशय, भ्रम और कौतुक-जन्य भय से प्रभावित रहा है और नाग वन्दना के प्रचलन का कारण भी सम्भवतः यही हो सकता है।

पर जहां विश्व के अन्य क्षेत्रों में नाग पूजा का प्रचलन प्रायः समाप्त हो चला है वहां पर्वतीय क्षेत्र में लोक धर्म के रूप में नाग पूजा के अवशेष आज भी उपलब्ध होते हैं। पर्वतों में कश्मीर से लेकर हिमाचल तक के समस्त पर्वतीय क्षेत्र में, नागों से सम्बंधित देवालय, चश्मे, पर्व तथा त्योहार तथा लोक कथाएं उपलब्ध होती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) **देवालय**—पर्वतीय क्षेत्र में नाग देवालय निम्नलिखित नामों से पुकारे जाते हैं—

i. **किलरू नाग**—का देवालय ; स्थान ढढकाई, भलेश-भद्रवाह।
ii. **कांसर नाग**– ग्राम जाड़, इलाका पाडर, किश्तवाड़।
iii. **खिज्जी नाग**—ग्राम हुंगा, इलाका भद्रवाह।
iv. **चतुर्भुज नाग**—ग्राम मठोला, इलाका भद्रवाह।
v. **तखूत नाग** –(सम्भवतः तक्षक). ग्राम थुबा, भद्रवाह।
vi. **बासक नाग**—(वासुकी), गाण्ठा (भद्रवाह), नालठी तथा भद्रवाह नगर के प्रसिद्ध काष्ठ मन्दिर की मानव आकार की सुन्दर मूर्ति। मुख्य आराध्य लोक देव।
vii. **बातें नाग**—भद्रवाह में हालोत ग्राम में।
viii **मेहन नाग** - ढ्लोहा ग्राम भद्रवाह में।
ix. **मेहल नाग** —मनोका ग्राम भद्रवाह में।
x. **मेह नाग**—अठोली ग्राम पाडर में।
xi. **मोर नाग**—चन्दर भटान, सिराज देसा में।
xii. **शान्तनू नाग**—सर्तिगल, भद्रवाह में।

xiii. **छेछ नाग**—सम्भवतः शेष, ततवोंई पाडर में ।
xiv **सुबार नाग**—सबार धार (पर्वत) भद्रवाह में ।
xv. **सागड़ू नाग** सागड़ू ग्राम, कैलाश क्षेत्र भद्रवाह में ।
xvi. **देहरा**—बसन्तगढ़, रामनगर में ।

इसके अतिरिक्त बिलावर, बनी और भड्डू तथा कश्मीर में भी नागों से सम्बंधित अनेक देवालय मिलते हैं । पर्वतीय क्षेत्र के उपर्युक्त नाग देवालयों में से अनेक की देहरियां गांव से बाहर किसी एकांत स्थान में बनी हैं जहां वर्ष के किसी विशिष्ट दिन अथवा पर्व पर किसी मेले अथवा त्योहार—जिसे कोड्ड कहते हैं का आयोजन रहता है । इसमें, रात्रि जागरण, नाच, लोक नाच और नाग पूजक चेले द्वारा देव का आवाहन और कुछ विशिष्ट कौशल—यथा जलते अंगारों पर चलना इत्यादि—का भी समावेश रहता है । पर्वतीय क्षेत्र में ऐसे मेलों और कोड्डों का वहुत प्रचलन रहा है ।

(ख) जल स्रोत—यह बात ध्यान देने की है कि सारे पर्वतीय क्षेत्र में जलस्रोतों के लिए नाग शब्द का प्रयोग होता है । किन्हीं स्थानों में इन जलस्रोतों की पूजा भी देवों के रूप में की जाती है और लोक समाज में उनके प्रति लोक देव की सी निष्ठा देखने को मिल जाती है और उनसे मनोवांछित फल की आशा की जाती है । इन नागों से कई तरह के विश्वास भी जुड़े रहते हैं । परिनाग (किश्तवाड़) के जलस्रोत से पत्थर उठाने पर वर्षा होने लगती है और यह पत्थर पुनः स्रोत में फेंक देने से वर्षा रुक जाती है । प्रिंगस नाग (किश्तवाड़) के पास वाले गांव में कोई मुर्ग नहीं पालता क्योंकि ऐसा करने से किसी हानि का भय रहता है ।

लोक मानस द्वारा जलस्रोतों को नागों के नाग कह कर सम्बोधित करने के कई मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं । एक सम्भावना यह भी है कि किसी भी जलस्रोत से पानी निकल कर जब टेढ़ा-मेढ़ा बहने लगता है तो उसका आकार एक सर्प अथवा नाग जैसा लगता है ; कई स्थानों पर पर्वतीय झीलों के पानी में श्वेत सुन्दर सर्प (जलनाग) दिखाई देते हैं । अत इन कारणों से पानी के इन चश्मों का नाम नाग पड़ गया है ।

पर्वतीय क्षेत्र में जलस्रोतों से सम्बंधित नागों के कुछ नाम इस प्रकार हैं—

i) किश्तवाड़ में—काली ाग, डावर नाग, दमोल नाग, कम्मी नाग, गोरदश नाग, परिनाग, गुमाई नाग, प्रिंगस नाग, हमार नाग, पूत नाग, महल नाग प्रभृत्ति ।
ii) भलेश में—कई नाग, गल्लू नाग, बैंसर नाग, भौतड़ नाग ।
iiii) भद्रवाह में—चावर नाग, बुन नाग, वेरी नाग, केसर नाग ।
iv) भड्डू, बिलावर, बसन्तगढ़, डुडु, कश्मीर घाटी और इसी क्षेत्र के पर्वतीय स्थानों पर सैंकड़ों ऐसे नाम जलस्रोतों से सम्बंधित हैं ।

क्षेत्रीय लोकदेव

पर्वतीय लोक समाज कई प्रकार के क्षेत्रीय लोकदेवों की पूजा भी करता है । इनमें से कुछ का सम्बंध सद्-आत्माओं से है तो कुछ का प्रेतात्माओं से अथवा असुरों से । इन्हें विशेष

अवसरों पर ही प्रसन्न करने का यत्न किया जाता है। लोक मानस में इनकी मान्यता का कारण उनके रुष्ट होने से कष्ट मिलने का भय है। उन्हें प्रसन्न करने के विधान अलग-अलग हैं जिन्हें लोक समाज के निम्नवर्ग का एक विशिष्ट समुदाय—चेला, जोगी, तान्त्रिक—जानता है। इन सभी का सम्बंध किसी नीच जाति से है। क्षेत्रीय लोक देवों के ये पुजारी लोक समाज में व्याप्त रोग-शोक के कारणों की जानकारी तथा उनसे छुटकारा पाने के उपाय करते हैं। ऐसे क्षेत्रीय लोक देवों की मान्यता लोक में एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित रहती है। पर्वतीय क्षेत्र में मान्य ऐसे कुछ एक लोक देवों का विवरण इस प्रकार है—

क्रम सं०	स्थापना स्थान	लोकदेव	विवरण
	(तहसील डोडा)		
१.	ग्राम मलान	आधरदेव	?
२.	,, मलयना	कंडेर देवता	?
३.	,, ,,	चांदर वाली देवी	लोक में व्याप्त विश्वास के अनुसार चन्द्रावली नाम की एक ग्राम-बालिका कहीं खो गई। कुछ समय उपरान्त एक ग्रामवासी को स्वप्न में दिखाई देकर उसने एक दवी मूर्ति निकालने का निर्देश दिया। इस मूर्ति से जिस देवालय की स्थापना की गई उसे चांदर वाली देवी कहा जाता है।
४.	सींखली	चांसर देव	?
५.	कुलहांड	दाता रणपत	इस लोक देव का सम्बंध बीरपुर-जम्मू से सम्बंधित दाता रणपत की प्रसिद्ध गाथा से बताया जाता है। ग्राम निवासी अपने को बीरपुर से आया बताते हैं।
६.	सींखली/देसा मलान	घुमदेव	?
७.	ग्राम थाना ग्राम कुल्हांड	पीर्पण देव	?
८.	ग्राम मलवन्ना	महापत्तम	महाबली हनुमान के अनुरूप शक्ति सम्पन्न लोक देव।
९.	वेउली ग्राम	मालन देव	?
१०.	सींखली	लीड देव	?
	(भद्रवाह तहसील)		
११.	ग्राम चिन्ता, त्रोण भेजा मलवन्ना इत्यादि	केल्लूवीर	आसुरी वृत्ति के परिचायक लोक देवों में मुख्य रूप से केल्लूवीर का

नाम आता है। इन सभी वीर देवालयों में कोड्ड (रात्रि मेला) भी लगता है। केल्लू बीर का मुख्य देवालय त्रोण ग्राम के पास एक टीले पर स्थित है। मन्दिर काष्ठ का है।

शिष्ट वर्ग में भी कभी-कभी घर के किसी 'थम्म' (*Pillar*) को 'वीर' मानकर उसकी पूजा का विधान रहा है। वीर तथा बन वीर सम्बंधी कई लोक विश्वास लोक समाज में व्याप्त रहे हैं और वीर देव की पूजा नाथ पंथ की रहस्यमयी प्रवृत्ति की देन भी हो सकती है।

भद्रवाह और डोडा के इन क्षेत्रीय लोक देवों के अनुरूप ही पीर पांचाल से चम्बा तक के समस्त पर्वतीय क्षेत्र में ऐसे ही अनेक लोक देवों का प्रचलन है। इन सभी के साथ अपनी-अपनी जनश्रुतियां संलग्न हैं किन्तु उनकी मान्यता का क्षेत्र प्राय: सीमित रहता है।

साधु, पीर तथा महापुरुष : मठ तथा समाधियां

सम्पूर्ण भारतीय लोक समाज में विशिष्ट व्यक्तियों तथा महापुरुषों का सम्मान सदा से बना रहा है। राजा से लेकर रंक तक, सभी वर्गों के लोग, साधु, पीरों तथा फकीरों से अपनी मुरादों तथा इच्छाओं की परिपूर्ति के लिए उनके मठों में जाकर उनसे याचना करते रहे हैं अथवा उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी समाधियों अथवा अस्थानों पर जाकर अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करते रहे हैं। पर्वतीय क्षेत्र में भी ऐसे कई मठ और समाधियां देखने को मिलती हैं। इनमें से कुछ का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

i. गुप्तगंगा-—का मठ और शिवमन्दिर भद्रवाह में नीरू तट पर है।

ii. पत्थर तोड़ पीर – तहसील दफतर भद्रवाह में है। यह पीर दिन भर पत्थर तोड़ कर पीसता है और इसी से पकाई रोटियां खाता है ऐसा लोक विश्वास है।

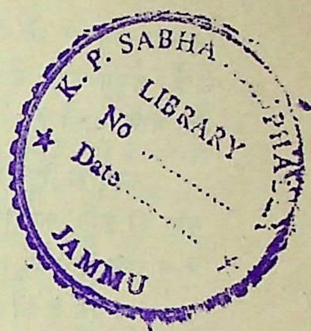
iii. मूंछ मरोड़ पीर—की कब्र तहसील के समीप ही है। इस पीर ने एक बिलाव पाला था वही उनके लिए, गले में लटकाए थैले में, भिक्षा ले आता उसी से वह गुजर कर लेते। ऐसी धारणा लोक में प्रचलित है।

iv. सैयद फरीदुद्दीन —की ज़ियारत किश्तवाड़ में है। इस्लाम के प्रचार हेतु आकर इन्होंने राजा किश्तवाड़ को मुसलमान बनाया ऐसा लोक मानते हैं।

●

इस प्रकार पर्वतीय लोक समाज में प्रचलित उपर्युक्त लोक धर्म के विभिन्न तत्त्वों को समझने के उपरान्त पर्वतीय लोक मानस का अध्ययन करने में हमें अभूतपूर्व सहायता मिलती है।

——



हस्ताक्षर नए···नए···

कश्मीरी हिन्दू विवाह संस्कार में प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली

—सत्यभामा राजदान

भारोपीय परिवार की आर्य शाखा को तीन शाखाओं में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार हैं—(क) ईरानी, (ख) दरद और (ग) भारतीय। दरद वर्ग को पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है जिसके अन्तर्गत शिना, कश्मीरी और कोहिस्तानी को लिया जाता है। इनमें कश्मीरी भाषा कश्मीर में ही बोली जाती है।

कश्मीरी भाषा में 'कश्मीर' को 'कशीर' तथा इसकी भाषा को 'काशुर' कहते हैं। वैयाकरण पाणिनि के अनुसार 'कश्मीर' शब्द 'कश' धातु में ईरट् और मुट प्रत्यय लगाने से बना है। 'कश' धातु प्रकाशन के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यथा "कशीत प्रकाशते विविध विद्या सदाचार शासन समृद्धयीदभिरित कश्मीरः"। अर्थात् विविध प्रकार की विद्या, सदाचार, शासन, समृद्धि आदि पदार्थों को जो प्रकाशित करता है वह कश्मीर कहा जाता है। कई विद्वानों के अनुसार "कश्मलमीरयति इति कश्मीरः" अर्थात् जो पापरूप मलों को दूर करता है वही कश्मीर है।

कश्मीरी लोग अपने उत्सव आदि मनाने में अन्य लोगों से आगे हैं। विवाह आदि उत्सवों के अवसर पर आतिशबाज़ी करने तथा बैंड-बाजे आदि बजाने की प्रथा धनी लोगों तक ही सीमित है। इन अवसरों पर महिलाओं के मधुर गीत ही चारों दिशाओं में सुनाई पड़ते हैं। अन्य भारतवासियों के समान ही कश्मीरी लोगों के सभी संस्कार धर्म सम्मत विधि से ही सम्पन्न होते हैं। हिन्दुओं के संस्कारों की संख्या सोलह है किन्तु इनमें जातकर्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह और मृत्यु, जिन्हें कश्मीरी भाषा में क्रमशः काहनेथर, ज़रकासय, मेखल, नेथर तथा मरुन कहते हैं, ही प्रमुख हैं। इनमें से जातकर्म और यज्ञोपवीत— इन दो संस्कारों को छोड़, शेष सभी संस्कारों का पालन कश्मीरी मुसलमान भी करते हैं। रीति में कुछ

भिन्नता होने पर भी सामान्यतया यह देखा जाता है कि मुसलमानों के उत्सव पर हिन्दु स्त्रियां उनका शकुन करने जाती हैं तथा हिन्दुओं के उत्सव पर मुसलमान स्त्रियां हिन्दुओं के घर मंगल गीत गाने जाती हैं।

कश्मीरी हिन्दू विवाह का उत्सव लौगाक्ष मुनि की कृति के अनुसार मनाते हैं। लौगाक्ष मुनि की कृति 'कश्मीर का धर्मशास्त्र' भारत में प्रचलित अर्थों से भिन्न है। विवाह संस्कार में आरम्भ से लेकर अन्त तक जितनी भी शब्दावली का कश्मीरी लोग प्रयोग करते हैं, उनमें से कुछ शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत से तत्सम रूप में तथा कुछ तद्भव रूप में लिए गए हैं। इस प्रकार के कुछ शब्दों का मैंने यहां विवेचन करने का प्रयत्न किया है—

कश्मीरी विवाह का आरम्भ 'गरनावय' से होता है जिसका अर्थ है घर की लिपाई-पोताई आदि करना। संस्कृत में घर को गृह कहते हैं और इसी घर को कश्मीरी में 'गर' कहते हैं। क्योंकि कश्मीरी भाषा में सघोष महाप्राण सघोष अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा भाई=बाई। संस्कृत में 'नव' शब्द का अर्थ है 'नया'। कश्मीरी में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'गरनावय' का अर्थ है पूरे घर तथा घर की सम्पत्ति को इस प्रकार से सम्भालना एवं सजाना ताकि आने वाले अतिथि यह अनुभव करें कि जो कुछ भी वे (अतिथि) देख रहे हैं, वह सब नया ही नया है। इसे कश्मीरी में 'लिवुन' भी कहते हैं जो सस्कृत के लेपन से बना है। संस्कृत के 'प' का कश्मीरी में प्रायः 'व' हो जाता है। यथा—तपन=तवुन, वपन=ववुन—ठीक इसी प्रकार लेपन से लिवन बना है। इस अवसर पर बालक तथा बालिका, दोनों के घर की स्त्रियां नया 'अटहोर' पहनती हैं जो वैदिक संस्कृत के 'अत्कहोरा' से बना है। यह कानों में पहनने वाला आभूषण है जिन्हें कश्मीरी हिन्दू स्त्रियां अभी भी कानों में पहनती हैं। ऋग्वेद के छठे मण्डल के २९वें सूक्त में अत्क का प्रयोग इस प्रकार से देखने को मिलता है—

"श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्रीशवसा दीक्षणावान्।
वसानो अत्कं सुरीभं दृशेकं स्वर्ण नृतीवषि रो बभूथ।।"[1]

इस मन्त्र में भी अत्क व्याप्तशील आभूषण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

इस अवसर पर सगे-सम्बन्धियों की स्त्रियां बालक तथा बालिका के घर आशीर्वाद तथा बधाई देने आती हैं जिसे कश्मीरी में 'पोषत' कहते हैं जो वैदिक संस्कृत के 'पोष' शब्द के करीब दिखाई पड़ता है और जिसका अर्थ है आत्मा तथा शरीर की पुष्टि करने वाला। मन्त्र इस प्रकार है—

---

१. हे नायक ! अग्रणीजन आपके जिस पादकाय सेवन को लक्ष्मी के लिये चारों ओर सींचते हैं और बल से ढीठ शस्त्र और अस्त्रों को धारण करने वाले उत्तम दीक्षणापाद देखने के लिये सुख करने वाले सुन्दर सुगन्ध को और व्याप्तिशील वस्त्र को धारण करते हुये सूर्य को जैसे ज्ञानवान्; वैसे जो आप प्रसिद्ध हो, हम लोग आपकी सेवा में हैं।

"अग्निना रीयमश्नवत्पोषमेव दिवे-दिवे यशसं वीरवत्तमम ।।"[२]

इसके बाद कन्या के बाल खोले जाते हैं। यह उत्सव केवल कन्या के घर में मनाया जाता है और कश्मीरी भाषा में इस उत्सव को 'मसमुचरून' कहते हैं। सिर के बालों को कश्मीरी में 'मस' कहते हैं। सम्भवत: बालों का मस्तिष्क[3] के साथ साहचर्य होने के कारण कश्मीरी भाषा में मस्तिष्क का अर्थादेश होकर मस बन गया। संस्कृत भाषा में बालों के लिये 'केश' शब्द का प्रयोग भी होता है जो कश्मीरी में 'कीह' बन जाता है जिसका अर्थ भी 'सिर के बाल' ही है। संस्कृत के श, ष और स कश्मीरी में प्राय: ह में परिणत हो जाते हैं। यथा—'दश=दह' ठीक इसी प्रकार केश से कीह बना। संस्कृत में √मुच् का अर्थ है खोलना, बन्धन से मुक्त कर देना। कश्मीरी में भी 'मुचरून' इसी अर्थ का द्योतक है। क्योंकि इस अवसर पर कन्या की उलझी हुई चोटी को खोल कर मुक्त कर देते हैं।

इसी के अगले दिन मेहन्दी रात आती है जिसे कश्मीरी में 'मअ्रंजिराथ' कहते हैं। संस्कृत में 'मञ्जिष्ठा' शब्द का अर्थ है मेहन्दी और यही मञ्जिष्ठा' कश्मीरी में 'माञ्ज' कहलाती है जो मेहन्दी अर्थ को ही द्योतित करती है। संस्कृत के रात्रि से 'राथ' बना है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि 'माञ्जिराथ' के अवसर पर बालक एवं बालिका दोनों के हाथ मेहन्दी से रंग दिये जाते हैं और तत्पश्चात् उनके सगे सम्बन्धियों की औरतें भी अपने हाथों पर मेहन्दी लगाती हैं और पूरी रात मधुर गीत गाती रहती हैं। निस्सदेह 'माञ्ज़' शब्द संस्कृत के 'मञ्जिष्ठा' के निकट है किन्तु मुसलमानों में इसका रिवाज अधिक होने के कारण सम्भवत: इसका प्रचलन कश्मीरी हिन्दुओं में भी हो चला। अस्तु, यह अवसर भी महिलाओं को विशेषकर प्रिय है।

मेहन्दीरात के बाद 'दिवगोण' आता है। यह विशुद्ध कश्मीरी शब्द है। किन्तु यह भी सम्भव है कि यह शब्द संस्कृत के देवगाण से बना हो जिसका अर्थ है किसी बालक अथवा बालिका को विवाह की अनुमति देने के लिये देवताओं की स्तुति करना। इस क्रिया के बाद यह कल्पणा की जाती है कि उस बालक अथवा बालिका (जिसका विवाह होना है) में देवताओं के समान गुणों का समावेश हो गया है। इस अवसर पर बालक तथा बालिका को स्नान कराया जाता है जिसे कश्मीरी में 'कन्यश्रान' कहते हैं और संस्कृत में 'कन्या संस्कार'। स्नान कराने के पश्चात् लड़की के बालों में मांग निकाल कर बाल बांधे जाते हैं जिसे संस्कृत में 'सीमन्तकरण' कहते हैं। सीमन्त का अर्थ है सीमारेखा, सिर के बालों की विभाजक रेखा—

---

२. ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, प्रथम सूक्त, तृतीय मन्त्र।

अर्थ—यह मनुष्य अच्छी प्रकार ईश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि को ही कलाओं में संयुक्त करने से प्रतिदिन आत्मा और शरीर की पुष्टि करने वाला जो उत्तम कीर्ति का बढ़ाने वाला और जिसे विद्वान लोग चाहा करते हैं विद्या आदि उसे सुगमता से आते हैं।

३. अथर्ववेद—१०/२ में मस्तिष्क का प्रयोग सिर के बालों के लिये हुआ है।

जिसके दोनों ओर बाल बराबर विभक्त हों। सीमन्तकरण के अवसर पर भी कश्मीरी लोग कन्या के बालों को सीमन्त के दोनों ओर बराबर रखते हैं। बालों की इस विभाजक रेखा को कश्मीरी में सुम[४] कहते हैं।

इस अवसर पर पीसे हुये मूंग की टिकियां बनाई जाती हैं जिसे कश्मीरी में 'मोंगवरि' कहते हैं। संस्कृत में मूंग के लिए मुग्द का प्रयोग किया जाता है तथा कश्मीरी में मोंग। इस संस्कार के लिए जो सामग्री प्रयोग में लाई जाती है वह इस प्रकार है—

१. संस्कृत में लाजा=कश्मीरी में इसे 'लायि' कहते हैं क्योंकि संस्कृत का 'ज' कश्मीरी में 'य' हो जाता है। यथा—जठर=यड़।
२. संस्कृत में तिल=कश्मीरी में इसे 'तेल' कहते हैं।
३. संस्कृत में दर्भ=कश्मीरी में इसे दर्ब कहते हैं। कश्मीरी में सघोष महाप्राण प्रायः सघोष अल्पप्राण में परिणत होने से 'भ' का 'ब' हो गया है।
४. कलश=कश्मीरी में भी 'कलश' ही।
५. संस्कृत अग्नि=कश्मीरी में 'अग्न'।
६. संस्कृत आसनपट्ट=कश्मीरी में भी आसनपट्ट ही।
७. संस्कृत घृत=कश्मीरी में ग्यव।
८. संस्कृत दुग्ध=कश्मीरी में दोद।
९. संस्कृत समिधा=कश्मीरी समिध।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सारी वस्तुओं को प्रयोग में लाया जाता है किन्तु ये कुछ ऐसी वस्तुएं है जिनके नाम संस्कृत के शब्दों से मिलते-जुलते हैं।

इस संस्कार के पश्चात् लड़की की सहेलियां उसको सजाती हैं। इधर से लड़के के घर वाले भी उसे देश, कुलाचार धार्मिक रीतियों के अनुसार सुसज्जित करते हैं। कश्मीरी में वर को 'महाराज' तथा वधु को 'माहरेन्य' कहते हैं। संस्कृत में 'महाराज' तथा 'महारानी' राजा तथा रानी के लिये प्रयुक्त होता है। यथा वैदिक ऋचा में लिखा है—"**कुबेराय बैश्रवणाय महाराजाय वै नमो नमः**" कहने का तात्पर्य यह है कि वर और वधु को इस अवसर पर राजा तथा रानी के समान समझा जाता है क्योंकि इस अवसर पर जो कुछ भी करते हैं, गाते बजाते हैं तथा खुशियां मनाते हैं, वह सब तो इन्हीं के कारण होता है। वर को राजा के समान सजाया जाता है। उसे अचकन तथा चूड़ीदार पैजामा पहनाया जाता है तथा उसके सिर पर केसरी रंग की पगड़ी बांधी जाती है। इसी प्रकार दूसरी ओर वधु को भी वस्त्रों, आभूषणों तथा शृङ्गार-सामग्री से रानी के समान सजाया जाता है। यह प्रथा पहले भी थी और आज भी ज्यों की त्यों चली आ रही है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के चौथे अंक में भी शकुन्तला की सखियां शकुन्तला को पुष्पों आदि से सजाती हैं। अतः बरात आने से पहले ही वधु को सजाया जाता है और सबसे पहले उसके बाल बांधे जाते हैं। तत्पश्चात् सिर पर 'कलपुश' रखते हैं

४. अथर्ववेद ६, ८/१३ में सीमन् का प्रयोग इसी अर्थ को द्योतित करता है।

जो सिर का आभूषण है और तिल्ले का बना होता है। वैदिक सं० में इसे 'ओपुश'[५] कहते हैं। इसके पश्चात् अन्य उपादानों से उसे सजाया जाता है।

वर के आने पर पहले द्वार-पूजा की जाती है जिसे कश्मीरी में भी द्वार-पूजा ही कहते हैं। यह पूजा घर में प्रवेश करने से पहले की जाती है और इसमें 'वास्तोष्पति' देवता की पूजा करते हैं। इस पूजा के समय निम्नलिखित सामग्री प्रयोग में लाई जाती है—

संस्कृत	कश्मीरी	
दर्भ	दर्ब	(भ का ब हो गया है)
सिन्दूर	सेन्दर	
आप्	कश्मीरी (मुसलमानों की भाषा में) आब	(प का ब)

द्वार-पूजा के पश्चात् वर के पिता तथा वधु के पिता आपस में जायाफल बदलाते हैं। इस जायाफल को कश्मीरी में ज़ाफ़ुल कहते हैं। इसके पश्चात् वर और वधु को लग्न मण्डप के पास ले जाया जाता है। फिर वधु का पिता अपनी लड़की का हाथ वर के हाथों में देता है और उस समय गुरु निम्नलिखित श्लोक पढ़ता है—"भगवन् कन्यां ददातु अस्मै"।

इसे संस्कृत भाषा में कन्यादान कहते हैं तथा कश्मीरी में इसे 'कन्यदान' कहते हैं। इसके पश्चात् वैदिक रीति से विवाह-संस्कार किया जाता है। पहले कलश की पूजा की जाती है। इस अवसर पर भी बहुत सी सामग्री काम में लाई जाती है किन्तु जिन वस्तुओं के नाम संस्कृत से मिलने हैं वे इस प्रकार हैं—

	संस्कृत	कश्मीरी	
१.	लाजा	लायि	(सं० का ज कश्मीरी में य में परिवर्तित होता है)
२.	सिन्दूर	सेन्दर	
३.	पुष्प	पोश	
४.	धूप	दुप	(ध का द हो गया है)
५.	अग्नि	अग्न	
६.	दर्भरज्जु	दर्बरज़	

इस अवसर पर पत्थर को भी प्रयोग में लाया जाता है जिसे कश्मीरी में 'पल' कहते हैं तथा संस्कृत में इसके लिये 'उपल' का प्रयोग होता है। इस पर वर तथा वधु अपने पैर रखते हैं। इस प्रथा से पहले ध्रुवतारा दिखाने की प्रथा भी थी। इसके बाद अग्नि के सामने पृथ्वी पर एक-एक करके सात रुपये रख दिये जाते हैं जिस पर से वधु सात पैर चलती है। इसका आशय यह है कि इस पर पाद रखने से कन्या दूसरे गोत्र में चली जाती है। इसको सप्तपदी भी कहते हैं। अब यहां चार शब्द ऐसे आये हैं जो संस्कृत के समान हैं। प्रथम शब्द है पृथ्वी[६] जिसका प्रयोग भूमि के लिये किया जाता है। कश्मीरी में 'पथुर' इसी अर्थ को द्योतित करता है और यह पथुर शब्द इसी पृथ्वी से बना है। दूसरा शब्द 'पाद' है जो पैर का द्योतक है और

५. ऋग्वेद दशम मण्डल, सूक्त ८५ का आठवां मन्त्र।

इसी अर्थ को द्योतित करने के लिये कश्मीरी में पदि कहते हैं। सप्त को कश्मीरी में 'स
कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सप्तपदी' का अर्थ है सात पाद चलना। चौथा शब्द 'गोत्र
आया है जिसको कश्मीरी में गुथुर कहते हैं। यह गोत्र शब्द संस्कृत का है। ऋग्वेद में गो
शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया गया है—

"त्वङ्गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतुदुरेषु गातुवित्"[७]

इसके पश्चात् अगला संस्कार "पोशपूजा" का आता है। संस्कृत में फूल को पुष्प कह
हैं तथा कश्मीरी में पोश। इस प्रकार से स्पष्ट है कि इस अवसर पर वर और वधु को ला
रंग की चुनरी ओढ़ा कर फूलों से पूजा की जाती है क्योंकि जैसे जम्मू में वर और वधू को कृ
तथा राधिका के समान माना गया है इसी प्रकार कश्मीर में वर और वधू को शिव और पार्व
के समान माना जाता है। "पोश पूजा" से पहले वर वधू के आंचल में सात अखरोट और कु
पैसे डालता है जो वधू अपने श्वसुर को देती है और जिन्हें लेने के बाद ही श्वसुर उन दोनों
आशीर्वाद देता है। इसे कश्मीरी में 'पारणडून्य' कहते हैं। 'पारण' संस्कृत शब्द है जिस
अर्थ है पार ले जाने वाला। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि संस्कृत की श, ष और
ध्वनियां कश्मीरी में प्रायः 'ह' में परिणत हो जाती हैं अतः स्पष्ट है कि संस्कृत के 'श्वसुर'
कश्मीरी में 'हयूर' तथा 'श्वश्रु' को 'हश' कहते हैं।

इसके पश्चात् दुल्हन को उसकी सहेलियां फिर से सजा कर विदाई के लिये तैयार करते
हैं तथा लड़की के सगे सम्बन्धियों सहित माता-पिता अपनी लड़की और दामाद को विदा कर
हैं। संस्कृत में लड़की को 'कुमारी' तथा दामाद को 'जामातृ' कहते हैं जिन्हें कश्मीरी में क्रमश
'कूर' और 'जामतुर' कहते हैं। इस अवसर पर कश्मीरी लोग अपनी लड़कियों को बहुत
सामान दहेज के रूप में देते हैं, विशेष कर स्वर्ण अधिक मात्रा में दिया जाता है। संस्कृत
'स्वर्ण' को कश्मीरी में 'सोन' कहते हैं। स्वर्ण के र् का कश्मीरी में लोप हो गया है तथा '
का 'न' बन गया है।

ससुराल पहुंचने पर लड़की की ननद बाहर का द्वार बन्द कर देती है और अपने भैया
पैसे लेकर ही उन्हें अन्दर जाने देती है। यह प्रथा प्राचीनकाल से कश्मीर में चली आ रही
तथा अब भी ज्यों की त्यों है। संस्कृत में ननद को 'जामि' कहते हैं तथा कश्मीरी में ज़ाम
ऋग्वेद में इस 'जामि' का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

"त्वमग्ने प्रमीतस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृतव जामधो वयम्।"

इस प्रकार से स्पष्ट है कि कश्मीर के जो सामाजिक संस्कार हैं उनमें प्रयुक्त शब्दावली में
कुछ तो मूलतः संस्कृत शब्द हैं और कुछ संस्कृत के तद्भव।

———

६. मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्॥ ऋग्वेद १/२२/१३

७. ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ५१वें सूक्त का तृतीय मन्त्र।

कहानी

चीड़ें झुकती हैं

—अशोक जेरथ

शरदोई ने थोड़ा सा ठहर कर मिचमिचाती आंखों से पीछे देखा। अपने कटे हुए सफर का अंदाज़ा लगाया फिर चश्मे के किनारे टिक कर पीठ पर बन्धे कनस्तरों की रस्सी को ढीला करके; माथे पर उभरे पसीने के कतरों को साफ कर, अपनी कमीज के साथ पोंछ डाला। एक बार फिर वह बाकी रास्ते को पार करने के समय का अन्दाज़ा लगाने लगा। ऊपर से यहां तक, फिर दुद्दर तक और दुद्दर को पार करने के लिए अब तक बिताए हुए समय से कितना ज्यादा लगेगा ? वह हर बार यहां आकर ऐसा ही हिसाब करता है। पिछला बिताया हुआ फासला सोचकर उसको राहत मिलती है क्योंकि उसके सफर का यही हिस्सा सबसे कठिन होता है।

सांय सांय करती हुई चीड़ों के बीच में से होती हुई हवा शरदोई के जिस्म में ठण्डक भर देती है। धीरे-धीरे उसका पसीना सूख जाता है। खलदरे से भरे कनस्तरों को ठीक से चश्मे के पत्थरों पर टिका कर वह नीचे झुक कर अंजुली भर पानी पीता है और तब कमीज की जेब से खैनी निकाल कर अपने दांतों में मलता है। बार बार मिचमिचाती आंखों से ऊपर देखने की एक नाकाम कोशिश के बाद, पल भर दुद्दर के रेखांकित नाले की ओर देखकर वह, बाकी बचा हुआ, दो तिहाई रास्ता काटने चल पड़ता है।

दस साल ! हां पूरे दस साल, एक तिहाई, दो तिहाई और पूरा रास्ता काटते उसे दस साल होने को आए। इस सारे समय को उसने बरसातों से गिना है। उसे पता है कि कब दुद्दर का पानी अपने शान्त बहाव को छोड़कर फुफकारने लगता है। हर बार बरसात के समय उसे तथा सन्दली को दुद्दर पार करने के लिए पुल का रास्ता अपनाना पड़ता है जिससे उनका फासला और बढ़ जाता है। वह तो उस उफनते पानी से भी नहीं डरता पर सन्दली भी फिर जिद करने लगती है। वह भी दो कनस्तर उठाकर उतना ही फासला तय करना चाहती है। शरदोई को कभी कभी उस पर तरस भी आता है। शादी के बाद से ही वह खलदरे से भरे इन

कनस्तरों को ढोने लगी थी। पहली बार जब उसने खलदरे का भरा एक कनस्तर उठाया था तो उसका चेहरा सुर्ख हो आया था। सारे रास्ते में दस से भी ज्यादा जगह पर वह ठहरी थी और जब ठेकेदार के अड्डे पर पहुंची थी तो उसके पांव छील आए थे। सारे कपड़ों और बालों पर खलदरा बिखरा हुआ था। वह उसे देखकर हंसा था—"दुत्...साली नेपाली होकर..."।

वह शर्मा गई थी। दूसरे दिन से जितनी जगह शरदोई रुकता वह भी उतनी ही जगह पर ठहरती—उसका जिस्म थक कर चूर ही क्यों न हो जाए, पर नेपाली होने का अहसास उसे आगे धकेलता रहता। फिर न जाने कब एक कनस्तर से वह दो कनस्त उठाने लगी थी उसे ठीक से याद नहीं। लेकिन यह खूब याद है कि जब पहली बार वह दो कनस्तरों के साथ ठेकेदार के अड्डे पर पहुंची थी तो ठेकेदार उसको काफी देर तक घूर कर देखता रहा था। उसकी नजरें उसके जिस्म के एक-एक हिस्से को टटोल रही थीं। फिर शरदोई की ओर देखकर उसने कहा था—"भई जोड़ी तुम खूब लाए हो—क्या बढ़िया माल लाया है।" उसकी आंखों में जाने क्या था?

"साले...अगर मेरा बस चले तो...?" शरदोई पल भर को बहक गया था। नहीं, नहीं! बड़े आराम से तीन रु० एक कनस्तर के मिल जाते हैं; लड़ाई करने पर वह... वह आगे नहीं सोच सका। उसके आगे कुल जमा पूंजी तैरने लगी थी। चार सौ लाला के पास दो सौ ठेकेदार से लेने हैं और सौ रु० लाला के मुंशी से...उसने कुल हिसाब लगाया। जब एक हज़ार हो जाएगा तो वह संदली को लेकर नेपाल लौट जाएगा।

उसे अब लाल झण्डी नज़र आने लगी थी। यह उसके दूसरे पड़ाव की निशानी है—दुद्दर के इस किनारे की। यह काली मां के मंदिर की सबसे ऊंची झण्डी है जो काफी पहले ही नज़र आने लगती है। उसे लगता है कि दो तिहाई फासला उसने पार कर लिया है। कभी कभी तो झण्डी दिखने से पहले ही उसे मन्दिर में घंटी बजने का स्वर सुनाई देने लगता है। वह पीछे देखता है—संदली की धूमिल आकृति दिखाई देती है जो चश्मे के करीब आ पहुंची है। चश्मा चीड़ों की आड़ में गुम है। वह इत्मिनान से कदम आगे बढ़ा देता है।

मन्दिर के कलश दिखने के साथ ही वह घंटी की आवाज भी सुनता है। वह अनुमान लगाता है कि संदली अब चश्मे के करीब पहुंच चुकी होगी उसके माथे पर पसीने की बूंदें तैर रही होंगी। वह कभी भी वहां ठहर कर पानी नहीं पीती। उसे लगता है कि वह चश्मे का पानी पीकर बीमार हो जाएगी। केवल अपनी कमीज भिगोकर मुंह को ठण्डा कर लेती है।

अब काली का मंदिर उसे पूरी तरह दिखाई देने लगा है। वह बिना हाथ जोड़े ही नतमस्तक हो जाता है। वह मंदिर का कलश और झण्डियां देखकर ही कभी अपना सर नहीं झुकाता। वह सन्दली से कितनी बार कह चुका है कि ये झण्डियां तो लोगों ने अपनी मिन्नत पूरी होने पर चढ़ाई होंगी और कलश, मंदिर नहीं होता। मंदिर काली माई के कारण है अतः जब तक उसे मन्दिर के अन्दर स्थापित मूर्ति की झलक नहीं मिलती वह झुकता नहीं। संदली को उसका फलसफा समझ नहीं आता था फिर भी वह मंदिर पहुंचने पर ही सर को झुकाती थी।

मंदिर की सीढ़ियां उतर कर आंगन में रखे बेंच पर उसने कनस्तरों को रखा और हाथ धोने टँकी की ओर चल पड़ा। यह उसका रोजमर्रा का काम था। यहां वह संदली के पहुंचने तक सुस्ता लेता था फिर पेट भर भुने चने खाता, संदली को खिलाता और पानी पीकर आगे के सफर पर निकल पड़ता।

मंदिर के आंगन में ही शहतूत के फैले हुए पेड़ के नीचे मंच पर एक जोड़ा बैठा हुआ था। पुरुष अधलेटा सा पुस्तक पढ़ रहा था और स्त्री उसके कंधे से सर टिकाए आंखें बंद किए सुस्ता रही थी। उसने अपनी टांगें समेट रखी थीं, उसकी साड़ी टखनों तक ऊंची हो आई थी।

शरदोई ने हाथ धोते हुए उस ओर देखा। औरत के टखने खूब चिकने होकर चमक रहे थे। उसे संदली के फूले हुए टखने याद आने लगते हैं। स्त्री थोड़ा सा गुनगुनाती है तो पुरुष उसे थपथपाता है और फिर पढ़ने में लग जाता है। शरदोई कनखियों से देखने लगता है। स्त्री के टखनों का मांसल भाग और उभर आया है। वह तिनके से अपने दांत खुरचने लगता है। किन्तु दांत खुरचते खुरचते भी उसका पूरा ध्यान स्त्री की ओर ही लगा रहता है। वह सोचने लगता है कि लोग क्यों दूर-दूर से पहाड़ देखने आते हैं? उसे तो इन पहाड़ों में अपना जीवन बिताकर भी कुछ नहीं मिला। वह सुनता है कि पहाड़ों पर खुशबू फैली है, ठण्डी और साफ हवा है—चीड़ों के नीचे जीवन बिखरा पड़ा है पर उसे तो केवल अपने पसीने की बू आती है – खुशबू है तो केवल संदली की जब वह बहुत पास होती है। ऐसी खुशबू क्या पहाड़ों में···फिर उसका ध्यान भटकने लगता है। जब संदली नई-नई आई थी तो उसके भी टखने इसी तरह चिकने और एकसार मांसल थे। पांव बिलकुल साफ थे और चेहरा चीड़ के ताज़ा फलों की तरह एकदम ताज़ा। उसका ध्यान फिर औरत की ओर चला जाता है। उसका मर्द उसे थपकी देते हुए उसके गालों को सहला देता है। उसे संदली के पहले के लाली युक्त गाल याद हो आते हैं। लेकिन उन्हें कभी भी किसी के सामने उसने छूने नहीं दिया। वह एकान्त में उसे मिलने के लिए तरस जाता था। वह कभी भी ऐसे नहीं बैठे थे। उसके अन्तर में कुछ चटक गया था। बहुत पहले का बैठा हुआ कुछ - जिसे वह केवल महसूस करता था पहचानता नहीं था पिघल कर धीरे-धीरे उसके अन्तर में जमता रहा था ···अब कुछ अजीब सी हलचल करने लगा था। उसने खैनी की डिबिया निकाली और थोड़ी सी खैनी अपने दांतों में मलकर डिबिया फिर अपने फटे कुर्ते में रखकर बेंच के पीछे थूकने लगा। थूक की लार उसके कुर्ते को लाल कर गई थी। अनमने ढंग से उसे साफ किया तो उसे लगा कि अन्तर में कुछ बहता बहता सहसा थम गया है। उसे पकड़ने की उसने कोशिश नहीं की। उसने देखा पुरुष ने अपनी पुस्तक नीचे रख दी है और दोनों हाथों से अपनी स्त्री का सर पकड़ कर उसके मुंह की ओर झुक आया है। स्त्री कुनमुनाकर आंखें खोल देती है···फिर मुस्करा देती है। वह उसकी ओर झुक जाता है। शरदोई के अन्तर में जमा हुआ सा कुछ फिर से बहने लगता है। मन्दिर के रास्ते से संदली का आकार प्रकट होने लगता है। धीरे-धीरे सरकती हुई वह मन्दिर की सीढ़ियों से उतर कर शरदोई के पास खड़ी हो जाती है। शरदोई की नज़रें उसके

शरीर को परखने लगती हैं। उसे लगता है कि उसका चेहरा पिलिया गया है। उसकी स्कर्ट-नुमा मिनी धोती से बाहर निकले टखनों पर मैल की परतें चढ़नी शुरू हो गई हैं। उसकी एड़ियां कहीं-कहीं से उखड़ रही हैं। उसके पसीने से नम कुर्ते में से झांकती उसकी छातियों के मुंह बार-बार गीले कुर्ते से टकराकर लौट रहे हैं। उसका ध्यान फिर स्त्री की खुली टांगों की ओर चला जाता है। संदली ने कनस्तरों को अपनी पीठ से उतार दिया है और स्वयं सुस्ताने लगी है। उसका चेहरा सुर्ख हो आया है, गर्मी और थकान से। शरदोई उसे घूरता रहता है। वह उसके यूं एकाएक देखने से अनमनी हो जाती है—क्या है ? वह भड़क उठती है। शरदोई चेत जाता है। फिर उठकर गिलास से उसे पानी देता है—'हाथ-पांव धो लो।' वह उसे थोड़ा रुकने को कहती है तो शरदोई कनखियों से जोड़े की ओर देखने लगता है। स्त्री ने अपनी टांगें समेट ली हैं पर अपना मुंह पुरुष की छाती पर रख दिया है। शरदोई का हाथ सहसा संदली के कन्धे पर जा लगा है। वह कुछ देर यूं ही बैठा रहता है फिर उसके कन्धे को अपनी ओर दबाता है तो वह उसका हाथ झटक देती है। उसका मुंह सुर्ख हो आया है। शरदोई कनखियों से देखता है। उसका जी करता है कि वह भी संदली के गालों को थपथपाए और संदली उसकी गोद में सर रखकर सो जाए पर•••वह उठता है और पानी का गिलास ले आता है। संदली हाथ-मुंह धोकर पांव की ओर झुक जाती है। उसकी छातियां खुले गले से झांकने लगती हैं। शरदोई सोचने लगता है कि सामने वाली स्त्री ने जरूर कोई 'ऐसी-वैसी' बनियान पहनी होगी।

चने खाने और पानी पीने के बाद संदली कनस्तरों को उठाने के लिए उठती है तो वह उसे कन्धों से पकड़ कर रोक लेता है। संदली उसे बड़े अजनबी ढंग से देखती हुई उसकी नजरों का पीछा करती है। उसकी नजरें जाकर शहतूत के नीचे बैठे जोड़े पर चिपक जाती हैं। वह आंखें उगाल कर शरदोई को देखती है जैसे उसके साथ कोई अनहोनी घटना घट गई हो फिर जोर से 'थुच' कर थूक फेंकती हुई खलदरे के कनस्तरों को सम्भालने लगती है। शरदोई अभी भी भीगा सा उसे पकड़े हुए था। वह आंखें तरेरती हुई उसके हाथ को धकेल देती है और कनस्तरों को उठाकर चलने लगती है। शरदोई उसे खोई आंखों से देखता रहता है। जैसे उसका कुछ उससे अलग हो गया है। निराश घिसटता हुआ वह कनस्तरों को सम्भालता हुआ बेंच के पीछे 'थुच' करके लार फेंकता है और मरी सी उदास चाल से दुद्दर की ओर चलने लगता है। उसके कानों में ठेकेदार के शब्द गूंजने लगते हैं—"क्या माल लाया है ?" ●

[मार्च १९८० में अभिनव थियेटर, जम्मू में आयोजित हिन्दी लेखक सम्मेलन में पठित]

कविता

कलगी वाला मुर्गा

—डॉ० आदर्श

मुन्ना बहुत खुश है
ताली बजाता वह देख रहा है
अपने सामने कलगी वाला
सुनहरी मुर्गा !
मुर्गा देख रहा है—एकटक
सामने वाली दीवार की मुण्डेर
और उस पर बैठी नन्ही चिड़िया ।

मुर्गा भी शायद चाहता है
मुण्डेर पर बैठना
पंजों पर डालता है जोर
फड़फड़ाता है पंख/उड़ाता है धूल
फिर गिर पड़ता है भरभरा कर नीचे ।
मुन्ना खुश होता है
मारता है किलकारियां
कितना अच्छा है यह प्यारा सा मुर्गा ।

फिर मुन्ना करने लगता है प्रतीक्षा
कि मुर्गा फिर करेगा कोशिश
कितना अच्छा लगेगा जब वह
फड़-फड़ करता उड़ेगा
जरूर पहुँच जायेगा मुण्डेर तक
वह इस बार—
बैठेगा नन्ही चिड़िया के पास ।

किन्तु मुर्गा चुगता जाता है
दाने लगातार
मुन्ना सोचता है
जब मुर्गा गर्दन उठाकर
उस मुण्डेर और चिड़िया को देखेगा
तब वह जरूर उड़ेगा
पर मुर्गा गर्दन उठाकर देखता है
अपने सामने वाली मुण्डेर को
अजनबी की तरह
फिर से टूंगने लगता है अपने दाने !

मुन्ना खिन्न हो चला है
लौट चलता है अनमने कदमों से
घर की ओर—
पलट कर फिर से देखता है एक बार
शायद भरने वाला हो मुर्गा
अपनी पहले जैसी उड़ान ।

———

कहानी

चुम्बक

—शिव रैना

आवाज़ व्यक्तित्व से बढ़कर थी। हाथों में भी जादू था। सधी हुई अंगुलियां वॉयलिन की झंकार के साथ श्रोताओं के दिलों को धड़का रही थीं। गायक पैंतीस वर्ष की अवस्था का था। रंग काफी काला था। कद-कामत और फुर्ती हीरो जैसी। उसने गहरा मेक-अप किया था और आधुनिकतम लिबास में था। काफी आकर्षक लग रहा था।

गुलमर्ग में शीतकालीन वार्षिक खेलों के बाद 'होटल कश्मीर' ने एक रंगारंग सांकृतिक-कार्यक्रम आयोजित किया था। कार्यक्रम में देश के लोकप्रिय प्रॉइवेट कलाकारों को विशेष रूप से बुलाया गया था। दिलजीत अम्बाला से अपने दस कलाकारों के साथ आया था। उसने श्रोताओं को सबसे अधिक प्रभावित किया था। कव्वाली से फिल्मी-गीत और डॉन्स से पॉप म्यूज़िक तक, दिलजीत हर क्षेत्र में आगे था। दिलजीत के चेहरे पर एक विशेष गम्भीरता थी। गाने-बजाने का लाखों का धन्धा था। विवाहित था और पूरे पांच बच्चों का बाप था। हज़ारों प्रशंसक थे।

होटल कश्मीर के हर दर्शक की नज़रें दिलजीत के बिजली की तरह थिरकते कदमों, एक्शन-सांग और वॉयलिन पर थीं। लड़कियां तो पलकें तक नहीं झपका रही थीं। सभी मंत्र-मुग्ध थे। होटल का मालिक भी खुश था।

अचानक 'शो' खत्म हुआ। पौन घण्टे बाद, साधारण नॉइट-सूट में दिलजीत बिलकुल एक आम-सा व्यक्ति नज़र आने लगा। खाने-पीने के बाद दिलजीत साथियों के साथ टहलते टहलते गॉल्फ-क्लब की ओर निकल गया। अचानक बातचीत का रुख लड़कियों की ओर मुड़ गया।

कॉमेडियन लूथरा ने कहा—'आज की तुम्हारी हर ऑइटम लाजवाब रही। लड़कियां तो जैसे मर ही मिटी थीं। एक इशारा करते, तो स्वयंमेव दस हाज़िर हो जातीं!'

दिलजीत ने गंभीर होकर जवाब दिया—'यह मेरी शराफत और एक वफादार पति होने का अहसास है जो लड़कियों और औरतों को मेरे चंगुल से बचाता है ; वर्ना कसम कला की, जिस औरत पर निगाह रखूं, उसे न छोड़ूं !'

संतूर-वादक मुन्ना बड़ा झक्की किस्म का युवक था। उसे आज तक किसी जवान लड़की से खुलकर बात तक करने का अवसर न मिला था। जेब से सौ रुपये का एक करारा नोट निकाल कर, दिलजीत को दिखाकर बोला—'उस्ताद, यह नोट अभी तुम्हारा—अगर सामने जाती फौजी-अफसर की लड़की से दोस्ती गांठ लो !'

दिलजीत बिना जवाब दिए उस मेम-टॉइप सुन्दर लड़की की ओर यों चल पड़ा, जैसे चाभी के खिलौने को चाभी भरकर ज़मीन पर छोड़ दिया गया हो।

मुन्ना, लूथरा, पवन और खैरायती वहीं खड़े होकर, बल्वों के तेज़ प्रकाश में, लड़की और दिलजीत को देखने लगे। इस लड़की ने भी 'होटल कश्मीर' का कायक्रम देखा था। दिलजीत ने उस लड़की से मुस्करा कर कुछ कहा। लड़की का गभीर चेहरा तुरन्त खिल उठा। वे दोनों थोड़ी देर वहीं खड़े रहे। फिर वे क्लॅब की आरामदेह गर्म कुर्सियों पर बैठकर आधा घण्टा बातें करते रहे !

दिलजीत वापस आया, तो संतूर-वादक मुन्ना का मुंह ईर्ष्या से सूज गया था। बिना बोले, सौ का नोट उसने दिलजीत को थमा दिया। उस नोट की व्हिस्की मंगाकर, दिलजीत ने तुरन्त साथियों में चरणामृत की तरह बांट दी।

गुलमर्ग, पहलगाम और कश्मीर के कुछेक अन्य होटलों में 'दिलजीत एण्ड पार्टी' के कुल बारह दिन के प्रोग्रॉम थे। इन बारह दिनों के दौरान, दिलजीत ने साथियों से जुए, इश्क लड़ाने की शर्तों और दूसरे प्रोग्रामों से, काफी पैसा ऐंठ लिया था। साथियों के सीनों पर सांप लोट गये। उन्हें सबसे बड़ा सदमा यह था, कि मोटे-मोटे काले होठों और हब्शी-जैसे चेहरे वाला, विवाहित दिलजीत बड़ी-से-बड़ी औरत को पलक झपकते फांस कैसे लेता है ? वह अपनी 'तक्नीक' किसी को बताता भी नहीं था। अजनबी स्त्री या युवती तक को चुटकियों में फांस लेता था। ऐसा वह केवल नकद शर्तों पर करता था। वर्ना इश्क लड़ाने का शौक उसका पत्नी तथा स्टेज तक ही सीमित था। वह अनुशासित और सुनियोजित जीवन जीने का समर्थक था। जितनी कमाई करता था, उसका थोड़ा भाग पूजा-पाठ तथा दान में भी लगाता था। सहयोगियों का वेतन समय पर देता था। एक सुन्दर इमारत में उसका प्राइवेट ऑफिस था। ऑफिस सुसज्जित और आरामदेह था।

दिलजीत के 'फांसने' के गुण से प्रभावित होकर, दर्जनों निराश प्रेमियों, मूक प्रेमियों तथा ईर्ष्यालु या प्रतिशोधी प्रेमियों ने उसकी सेवाएं लेने की नाकाम कोशिशें भी की थीं। दिलजीत के बारे में प्रसिद्ध हो चुका था कि उसके पास कोई 'मोहिनी बूटी' है जो कुलटा, अभिमानी, नम्र, सम्भ्रांत हर स्त्री को, वश में कर लेती है। दिलजीत ने कभी किसी को कुछ न बताया अपने 'रहस्यमय फॉर्मूले' के बारे में। बस, शर्त रखने वालों को वह तुरन्त 'नकद मात' दे

दिया करता था। आधे प्रशंसक इसी 'नकद मात' से चमत्कृत होकर लौट जाते थे। आधे अनुमान लगाते रह जाते।

बैसाखी-मेले के सिलसिले में, शहर में बम्बई से 'ज़िन्दा नाच' की दो-चार पार्टियां आईं, तो संतूर-वादक मुन्ना और कामेडियन लूथरा के संयुक्त दिमागों में एक तरकीब आई। घाघरा-चोली पहन कर, तीन घंटे भोंडे फिल्मीगीतों पर नाचने वाली 'ज़िन्दा-नाच' की नर्तकियां वास्तव में ढलके उरोजों, बेढब कूल्हों और नंगी पेट-पसलियों की नुमायश ज़्यादा करती थीं।

'शो' के बाद एक क्रोधी, मुंहफट किस्म की छरहरी नर्तकी को पैसे देकर, मुन्ना और लूथरा ने अपनी योजना के लिए एक दिन तैयार कर लिया। नर्तकी का नाम रमिया था। बड़ी तेज़-तर्रार लड़की थी वह।

रमिया शाम के साढ़े सात बजे 'दिलजीत एन्ड पार्टी' ऑफिस के सामने से गुज़री, तो मुन्ना ने इशारा करके कहा—'उस्ताद' उस लड़की को फांस कर दिखाओ, तो दो सौ रुपये दूंगा!' उन्होंने दो बड़े नोट मेज़ पर रख दिए।

चाभी के खिलौने की तरह दिलजीत रमिया के पीछे हो लिया। मिनटों में उसने रमिया से दोस्ती गांठ ली। फिर मुन्ना से दो सौ रुपये जीत लिए। सब कुछ अप्रत्याशित ढंग से हुआ था।

मुन्ना और लूथरा जल कर कबाब हो गए। रमिया ने उनके पचास रुपये लौटा कर कहा—'मैं दिलजीत का कोई राज़ तुम लोगों को नहीं बताऊंगी!'

दिलजीत ने रमिया को 'बेटी' कहकर बुलाया था और 'शर्त' की पूरी कहानी भी बता दी थी!

———

एक लम्बी कविता

टुकड़े - टुकड़े चीख

—महाराज कृष्ण संतोषी

मेरे लिए
मौसमों का बदलना व्यर्थ है !
तुम्हारे प्यार का बुझना
मेरी ज़िन्दगी का अंतिम हादसा था
यह मैं नहीं मानता
मगर अनचाहे
तुम्हारी यादों को ढोते रहना ··
कोई हर्ज नहीं था
मगर जब ज़िन्दगी ढलान न रही
एक कठिन चढ़ाई में बदल गई
तुम्हारी यादों को ढोना / तोड़कर—
रख देता है ।

तुम्हें याद तो होगा
शुरू शुरू में
तुम्हें सम्बोधित कर
मैं लिखता था गीत ! नज़्म
छील देते हैं
जो परत दर परत आज मुझे !

संदूक में पड़े
तुम्हारे खतों की वहशत
मेरी लाचारी पर
हमेशा चमकने लगती है
एक अन्धापन धीरे धीरे
मुझ में छा जाता है ।

मैं चाहता हूँ
तुम्हारी यादों की लाठी
सदा के लिए तोड दूं
और बेसहारा होकर रास्तों पर
स्वतन्त्र घूमूं !

बहुत मामूली घटना थी
तुम्हारे प्यार का बुझना !
ना बुझता
तो भी कितनी देर जलता,
तेल की धार मर चुकी थी
बत्ती खुश्क हो रही थी—
और कितनी देर जिलाये रहते ?
बुझ गया तुम्हारा प्यार
आखिर बुझ गया, उसी तरह
जैसे किसी बच्चे की मासूम फूंक से
बुझ जाता है दीप !
मगर नींद के गर्म अन्धेरों में

स्वप्न प्यालियों में
मैं लगातार तुम्हारे रूप की चुस्कियां
लेता रहा, ओह, कितना बदल गया
था स्वाद !
तुम्हारे सौंदर्य की जीभ
मेरे प्यार के खून से
लपलपा रही थी।
आहिस्ता-आहिस्ता,
तुम्हारे ख्यालों के जल से ऊपर
सतह पर / मैं पैर रखने लगा
तब महसूसा
किनारे पर फैली रेत सा
कितना अनिश्चित है हमारा भविष्य
नहीं मालूम मौत का जल
कब बहा कर ले जाये !

थकान के बाद थकान
और फिर थकान
लम्हा-लम्हा मैं अपने भीतर
खामोश टूटता रहा
कुछ नहीं कर सका
कुछ नहीं पा सका
सिर्फ एक पछतावा
पक्षी सा मेरे सामने फड़फड़ाता रहा—
क्यों नहीं शुरू से ही तुम
एक सफल व्यक्ति बनने के प्रयत्न में
रोज़ किसी देवप्रतिमा के सामने
धूप जलाते रहे ?
मन्त्रोच्चारण करते रहे ?
क्यों नहीं सोचा,
अकेले रहकर
कुछ नहीं पाया जा सकता
और तनहाईयां चारना बंद कर देते,
क्यों नहीं एक धक्के के साथ
भीड़ में घुस गये,
दोस्त बनाए होते
सिगरेट का धुआं तथा
शराब की मस्ती ओढ़कर
सुखी व्यक्ति का अभिनय किया होता
कुछ नहीं कर सका
कुछ नहीं पा सका
समय-सहरा में
प्यास की तृप्ति हेतु
रेत टटोल रहा है !

●

भीड़ से अलग
मैं एक पोलियोग्रस्त हाथ सा
बेकार सड़ रहा हूं
मेरे मस्तिष्क के दर्पण में
चंद हस्सास चेहरे चमक रहे हैं !
कुछ नहीं
हमारा अस्तित्व कुछ नहीं
पतंग-कागज़ सा हलका
चंद लम्हें फड़फड़ा कर
फट जायेगा !
कुछ नहीं
हमारा अस्तित्व कुछ नहीं
घास पर शबनम सा
एक मामूली ठोकर से मिट जायेगा
कुछ नहीं
हमारा अस्तित्व कुछ नहीं
एक सुराखदार जहाज़ सा
कभी भी डूब जायेगा !
कुछ नहीं !
कुछ नहीं !!
कुछ नहीं !!!
हम अधूरे हैं
हम कुछ नहीं कर सकते

हम प्यार नहीं कर सकते
हम प्यार नहीं पा सकते
हम प्यार नहीं दे सकते
हम सर्द राख के ढेर हैं
हमारी रगों में वहशत दौड़ रही है
हमारे चेहरों पर बर्बरता चमक रही है
हमारी मानवता पर कीलें गड़ी हुई हैं
हम त्रिकोण में बंद
स्वतन्त्रता के लिए तड़प रहे हैं।
तुम्हारे प्यार का बुझना
एक मामूली घटना थी
जिसे रोका भी जा सकता था
(प्रतिध्वनि)
जिसे रोका भी जा सकता था
व्यवस्था के गंदे हाथों को
रोका भी जा सकता था...
(प्रतिध्वनि) रोका भी जा सकता था...
इतिहास की सड़ियल लाश को
हटाया भी जा सकता था
(प्रतिध्वनि) हटाया भी जा सकता था !
अलविदा सूरज ! अलविदा !
क्या मालूम कल सुबह
आंख खुले या न खुले,
अलविदा सूरज !
तुम्हारा उपकार मानता हूं।
जब गटर में एक तुच्छ कीड़े सा
यह जीवन लगता था मुझे
सिर्फ तुम थे
जो मुझे रोशनी देते रहे
चमकने की प्रेरणा देते रहे
और सिर्फ तुम होगे
जो मेरी शवयात्रा में भी चमकोगे
एक बार फिर चमकने की
प्रेरणा दोगे
तुम्हारा उपकार मानता हूं सूरज !



भीड़ मदहोश है
मुखौटे बेजोड़ हैं
लूट और लाठी का ज़ोर है
मस्ती में शहर ने
अपनी लोंगी उतारी है

विवेक—
ट्रैफिक सिगनलों सा / कभी बुझता
कभी जल उठता है !
यहां सबका
सही दिशा का ज्ञान खो गया है
यहां सब
लोहे के ज़ंग लगे बरतनों से
टकरा रहे हैं
यहां आशंकाओं के कुत्त
ज़ोर ज़ोर से भौंक रहे हैं
यहां कुछ-न-कुछ अवश्य होगा
यहां कुछ-न-कुछ होने वाला है।
तुम्हारे प्यार का बुझना
ज्यों ज्यों मुझमें
अंधकार भर रहा है
अधरों पर बांसुरी का स्वर
धीरे धीरे आंख खोलता है
नहीं जानता कौन होता है
जो अन्धेरे में मुझसे
मेरा गीत छीन लेता है ?

बस जानता हूं
अब यहां कोई किसी से
प्यार नहीं करेगा !
अब यहां कोई किसी से
बात नहीं करेगा !
इस धरती पर

घृणा की फसल उगेगी
यह धरती खून की कै करेगी !

इस जगत-दर्पण में
हर कोई अपना उदास चेहरा देखता है
यहां हर कोई
अपनी खुजली मिटाने के लिए
दूसरों के जिस्म छीलता है
यहां इन्सानों को कम
गिद्धों को अधिक भोजन मिलता है !
मसीहा न कोई होगा
नबी कोई न बनेगा

सब अपने स्वार्थ के बिलों में
चूहों से पड़े रहेंगे
हर तरफ से—
कुतरने की आवाज़ें आयेंगी !
यह दुनिया अब सिर्फ
चूहों के काबिल है।
इस दुनिया में जन्म लेना
सब से बड़ा अभिशाप है
इस दुनिया में प्यार करना
सब से बड़ा अभिशाप है
इस दुनिया में मानव होना
सब से बड़ा अभिशाप है।

———

जम्मू-कश्मीर में हिन्दी लेखन

हमारा साहित्य—1977

समीक्ष्य प्रकाशन जम्मू-कश्मीर में सन् १९७७ में हुए हिन्दी लेखन का विवरण प्रस्तुत करता है। इसमें उक्त प्रदेश के हिन्दी लेखन से जुड़े 11 लेखकों के विविध लेख संकलित हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर में होने वाली हिन्दी भाषा एवं साहित्य की गतिविधियों की सूचना मिलती है।

···अराजकता के विरोध में जम्मू प्रदेश की हिन्दी कविता के स्वर बहुत मुखर होकर फूटे हैं। उदाहरणों के माध्यम से श्री दीदार सिंह ने इस तथ्य को प्रमाणित किया है।

···कविता के माध्यम से कवि-व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए डॉ० ओमप्रकाश गुप्त निष्कर्ष निकालते हैं —"शशिशेखर की कविता के ये विविध पहलू उसके व्यक्तित्व के प्रामाणिक पहलू हैं। यह विविधता साक्षी है कि उसकी अनुभूति तथा अभिव्यक्ति नितांत मौलिक है···

···सुधी लेखकों ने अपनी बातें बड़े साफ ढंग से बिना किसी दबाव या प्रभाव में आये व्यक्त की हैं। उनके इस प्रयास की सराहना न करना अन्याय होगा। अंत में इस संग्रह के सम्पादक श्री रमेश मेहता को साधुवाद जिनके सतत प्रयास से उक्त क्षेत्र का हिन्दी लेखन और उसकी गतिविधियां प्रकाश में आ रही हैं।

—प्रकर (मई, 1981) से साभार

लेख

बंगला कहानी की विकास यात्रा

—रामचंद्र राय

भारतीय साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही किसी विधा को पढ़ने एवं समझने का सुयोग मिलता है। अन्य देशी भाषाओं की कहानियों की तरह, बंगला कहानी की जन्मदात्री भी समसामयिक पत्र-पत्रिकाएं ही हैं। हिन्दी की सरस्वती पत्रिका की तरह, बंगला की 'बंगदर्शन' पत्रिका को भी बंगला कहानी के उद्गम का स्रोत माना गया है। बंगदर्शन ने बंगाल की संस्कृति, समाज एवं विचारधारा को पुनर्जीवित किया। बंगदर्शन पत्रिका बंगला भाषा एवं साहित्य के नवयुग की धारक ही नहीं, अपितु नवयुग की वाहक भी है। उन्नीसवीं शती की बंगला पत्रिकाओं में भारती, साधना, हितवादी, नवजीवन, साहित्य आदि श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं की प्रवाहधारा का आरम्भ बगदर्शन से ही हुआ। "मधुमती" को बंगला की पहली कहानी माना जाता है, जो सन् १८७४ ई० में बगदर्शन पत्रिका में छपी थी। "मधुमती" के लेखक श्री पूः हैं। श्री पूः, वंकिमचंद्र चटर्जी के भाई श्री पूर्णचंद्र चटर्जी थे।

बंगला कहानी हितवादी, सबुजपत्र, कल्लोल आदि पत्र-पत्रिकाओं का आश्रय लेकर आज तक विकास की दिशा में कदम बढ़ाती जा रही है। बंगला कहानी रवीन्द्रनाथ एवं शरत्चंद्र का आश्रय लेकर फली फूली है।

रवीन्द्रनाथ ने नियमित रूप से हितवादी पत्रिका में सन् १८९२ ई० से कहानी लिखना प्रारम्भ किया। किन्तु इससे पूर्व इनकी "भिखारिनी" कहानी भारती पत्रिका में सन् १८७८ ई० में छप चुकी थी। बंकिमचंद्र की पहली कहानी "इंदिरा" सन् १९०० ई० में छपी। रवीन्द्रनाथ के द्वारा ही बंगला कहानी का पूर्ण विकास हुआ। बंगला कहानी के उदभव एवं विकास में रवीन्द्र कल्पना की सृष्टि है।

रवीन्द्र साहित्य में दो इच्छाएं प्रबल रही हैं। रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि मेरे साहित्य में जैसे दो इच्छाएं हैं—सुख-दुःख, विरह-मिलनपूर्ण मानव समाज में प्रवेश करने की आकांक्षा

और निरुद्देश्य सौन्दर्यलोक में भाग जाने की आकांक्षा। इसीलिए रवीन्द्रनाथ की कहानियों में दो इच्छाएं हमेशा दृष्टिगोचर होती हैं।

रवीन्द्रनाथ ने साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ सम्पूर्ण जीवन काल में ११८ कहानियां लिखीं। किन्तु रवीन्द्रनाथ के उपन्यास एव कहानियों के परिवेश में अंतर है। उपन्यास का परिवेश नगर है एवं उसके पात्र नगर में रहने वाले नागरिक हैं किन्तु उनकी अधिकांश कहानियों का परिसर ग्रामीण जीवन एवं पात्र गांव के रहने वाले हैं।

रवीन्द्रनाथ तो कलकत्ते के रहने वाले थे किन्तु उनका पैतृक पेशा जमींदारी था। विदेश से वापस आने के बाद जमींदारी के कार्य के लिए उन्हें गांवों में जाना पड़ा। इसीलिए उनकी कहानियों में गांव के लोगों एवं गांव के प्राकृतिक दृश्यों का समावेश अधिक हुआ है।

रवीन्द्रनाथ को केन्द्र करके सन् १९०१ ई० में भारती पत्रिका का प्रकाशन, ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर के उत्साह से जोड़ासांकों के ठाकुरगृह से हुआ। ठाकुर परिवार के ही श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर इसके प्रतिष्ठाता सम्पादक हुए। इसके बाद रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी ने भी कुछ दिनों तक इसका सम्पादन किया। ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर फ्रेंच भाषा अच्छी तरह जानते थे। वे फ्रेंच से बंगला में कहानियों का अनुवाद करते थे। स्वर्णकुमारी कविता, उपन्यास और कहानी तीनों लिखती थी। उसकी पहली कहानी "मालती" भारती पत्रिका में सन् १८७९ ई० में छपी है। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर मूलतः कलाकार थे। किन्तु बच्चों के लिए भी उन्होंने साहित्य की रचना की है। बंगला साहित्य में बाल-साहित्यकार के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। उनकी कहानियां 'शकुन्तला', 'क्षीरेर पुतुल' एवं 'राजकाहिनी' बहुत ही प्रसिद्ध हैं। अवनीन्द्रनाथ ने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय भाषा के माध्यम से कहानियों में दिया है। रवीन्द्रनाथ ने अवनीन्द्रनाथ की कहानियों के सम्बंध में कहा है—'प्राण के बीच प्राण सुरक्षित हैं।'

नगेन्द्रनाथ गुप्त रवीन्द्रनाथ के समसामयिक रहे हैं। रवीन्द्रनाथ से इनकी काफी घनिष्ठता थी। इनकी कहानियों की रचना शैली में बंकिम की तरह भाषा में अभिव्यक्ति एवं रोमांटिकता है। इनकी पहली कहानी "चुरी ना बहादुरी" भारती पत्रिका में सन् १८८७ में छपी थी।

रवीन्द्रोत्तर बंगला कहानी :

रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर रवीन्द्रोत्तर कहानीकार प्रभात मुकर्जी, चारुचंद्र बनर्जी, सुधीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्कुमारी चौधरी, माधुरीलता, मनिलाल गांगुली, सुरेन्द्रमोहन मुकर्जी, हेमेन्द्रकुमार राय, इंदिरादेवी एव अनुपमा देवी का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रभात मुकर्जी मूलतः कवि थे। किन्तु रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर गद्य की रचना करने लगे। चारुचंद्र बनर्जी मूलतः आलोचक थे। उन्होंने १६ कहानियां एव २८ उपन्यासों की रचना की है। सुधीन्द्रनाथ रवीन्द्रनाथ का भतीजा था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही वे साधना पत्रिका का संपादक भी हुआ था। माधुरीलता रवीन्द्रनाथ की पुत्री थी। उसने

कहानियों का एक संग्रह हाल ही में प्रकाशित हुआ है। मणिलाल गांगुली "भारती" की साहित्यिक मंडली को प्रोत्साहन देने वालों में से एक थे।

शरत्चंद्र चटर्जी का युग :

रवीन्द्र एवं रवीन्द्रोत्तर युग के बाद, बंगाल से बाहर एक ऐसे साहित्यकार का उदय हुआ, जिसने बंगला कहानी का रूप ही बदल दिया। ये हैं साहित्य सम्राट शरत्चंद्र जिन्होंने बंगला कहानी की काया को प्रेमचंद की तरह आकाश से उतार कर भूतल में मानव के साथ आत्मसात् करने की चेष्टा की। उन्होंने समाज की कुप्रथाओं, विशेषकर नारी की समस्याओं को विनष्ट करने की चेष्टा की। उन्होंने एक जगह लिखा है—"मैं समाज को मानता हूं किन्तु उसे मैं देवता नहीं मानता।" शरत्चंद्र की पहली कहानी "मंदिर" सन् १९०१ ई० में छपी थी। इसके अतिरिक्त इनकी रामेर सुमति, बिंदुर छेले, अनुपमार प्रेम, बोझा इत्यादि कहानियां विशेष रूप से चर्चित हुई हैं।

भागलपुर की "साहित्य गोष्ठी" शरत्चंद्र को केन्द्र करके "छाया" नाम से टाईप की हुई पत्रिका निकालती थी। उस समय शरत्चंद्र की उम्र लगभग सत्रह-अठारह वर्ष की थी। इस साहित्य गोष्ठी में विभूतिभूषण भट्ट, अनुपमा देवी, योगेशचंद्र मजूमदार, गिरीन्द्रनाथ गंगोपाध्याय एवं सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय थे। इन सबकी कहानियां शरत्चंद्र की विचारधारा से ओतप्रोत हैं।

शरत्चंद्र के बाद, बंगला कहानी को बुद्धि-कौशल एवं स्वतंत्र चिंतन के क्षेत्र में लाने के लिए एक दल आया जिसने "सबुजपत्र" के माध्यम से बंगला कहानी में स्वतंत्र चिंतन एवं अभिव्यक्ति पर बल दिया। इस संदर्भ में सबुजपत्र के संपादक श्री प्रमथ चौधरी का योगदान चिरस्मरणीय है। उनकी पहली कहानी फ्रेंच भाषा से अनुवादित 'फूलदानी" है। सबुजपत्र गोष्ठी का मुख्य ध्येय अभिव्यक्ति, बुद्धिवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं सौन्दर्य के प्रति आकर्षण था। 'सबुजपत्र' पत्रिका को केन्द्र करके धुर्जटिप्रसाद मुकर्जी, सतीशचंद्र घटक, किरणशकर राय, विश्वपति चौधरी, विमला प्रसाद मुकर्जी इत्यादि कहानीकार सामने आए। विमला प्रसाद मुकर्जी का आविर्भाव कहानी जगत में कमलालय बैठक में सबुजपत्र के बंद हो जाने के बाद हुआ। ये प्रमथ चौधरी के अनुगामी थे। प्रमथ चौधरी का प्रभाव इन पर बड़ा गहरा पड़ा है। लेखक ने इसे स्वीकार भी किया है। इनकी पहली कहानी "डाक बॉक्स" सन् १९२७ ई० में छपी थी।

सबुजपत्र गोष्ठी के बाद बंगला कहानी ने एक नए युग में पांव रखा। वह है—कल्लोल युग। प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप विश्वव्यापी विशृंखलता छा गई। लोगों में राष्ट्रीय एवं अर्थनैतिक पतन और विषमता के कारण कल्लोल ने इनके विरुद्ध आवाज बुलन्द की। आशा की किरण कहीं भी नहीं दिखाई दे रही थी। इस विषम परिस्थिति में लोगों के दुःख-दर्द को संवेदना देने के लिए कुछ युवा साहित्यकारों का एक दल सामने आया जिन्होंने कल्लोल, कालिकलम, एवं प्रगति नामक तीन पत्रिकाओं का आश्रय लेकर सामाजिक एवं आर्थिक

विषमताओं को दूर करने के लिए आन्दोलन किया। साथ ही उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक कुव्यवस्थाओं को सुधारने की चेष्टा भी की। इस काम में कल्लोल पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसीलिए इस युग का कल्लोल पत्रिका के नाम पर कल्लोल युग नाम पड़ा। इन लोगों का मुख्य स्वर प्रचलित परम्परा के साथ रवीन्द्रनाथ का भी विरोध करना था। जिसे आधुनिकता के नाम से संबोधित किया गया। कल्लोलधारा के विरोध में भी एक दल सामने आया। वह है बंगश्री, शनिवारेर चिट्ठी, प्रवासी एवं विचित्र नामक पत्रिकाओं का मंच। किन्तु जब किसी विधा में एक विशेष धारा का प्रवाह आ जाता है तब हम उसे उसी धारा के नाम से संबोधित करने लगते हैं जैसे हिन्दी का छायावादा युग। कल्लोल पत्रिका का प्रकाशन सन् १९२३ ई० में हुआ। किन्तु कल्लोल भावना प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही प्रवाहित होने लगी थी। कल्लोग युग में अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त, प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, ताराशकर बनर्जी, शैलजानन्द मुखोपाध्याय, मनीन्द्रलाल वसु, दिनेशरंजन दास, गोकुलचंद नाग, जगदीश गुप्त, मनीश घटक, कवि नज़रुल इस्लाम, सरोज राय चौधुरी, प्रबोध कुमार सान्याल, मानिक बंद्योपाध्याय, शरदिन्दु बनर्जी, विभूतिभूषण बनर्जी, मनोज वसु, बनफूल "बलाईचंद्र मुखोपाध्याय", विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, अन्नदाशंकर राय, सजनीकांत दास, रथीन्द्रनाथ मित्र एवं प्रमथनाथ विशी आदि कहानीकार हुए।

कल्लोल युग की कल्लोल भावना में कुछ कथाकारों का मन नहीं रम सका। उन्होंने अपने आसपास के परिवेश को अपनी कहानियों का विषय बनाया। अपने "घरेर मानुष" के दुःख दर्द वेदना पीड़ा अभाव को संवेदनशील बनाने की चेष्टा की। ये हैं—ताराशंकर बनर्जी, शैलजानन्द मुखोपाध्याय एवं सरोजराय चौधुरी। इन कथाकारों की प्रारम्भिक रचनाएं कल्लोल में ही छपी थीं।

ताराशंकर बनर्जी ने प्रेमचंद की तरह ग्रामीणों की समस्या को अपनी रचनाओं में उठाया है। किन्तु उनका क्षेत्र सीमित है। उन्होंने केवल बीरभूम जिले के रांगा माटी (लाल मिट्टी) के गांवों में बसने वाले जमींदारों से लेकर छोटे तबके हाड़ी, मोची, डोम, बाग्दी जातियों की जीवन यात्रा को ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। शरत्चंद ने तो केवल नारी की समस्या को ही उठाया था। किन्तु ताराशंकर ने प्रेमचंद की तरह गांव में बसने वाले तमाम लोगों के दुःख दर्द को करीब जाकर अनुभव किया और साथ ही गांधीवादी आंदोलन की पृष्ठभूमि में लोगों के भीतर राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक चेतना का चित्र उजागर करने का प्रयत्न किया है। ताराशकर की प्रारम्भिक कहानियां रसकलि, हारानोसुर, स्थलपद्म कल्लोल पत्रिका में ही छपी थीं। उन्होंने अपनी कहानियों में अपने आंचलिक परिवेश को पूर्ण अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। किन्तु एक बात स्मरणीय है कि ताराशंकर एवं प्रेमचंद के जीवन में बहुत ज्यादा अंतर है। जहां प्रेमचंद एक सामान्य डाक मुन्शी के लड़के थे वहां ताराशंकर का जन्म जमींदार परिवार में हुआ था।

शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने स्वयं अपनी रचना के सम्बंध में कहा है—"मेरी कहानी का परिसर कोयले की खान एवं चरित्र सब संथाली मजदूर हैं।" शैलजानन्द आरम्भ में कल्लोल

भावना से युक्त रहे। उनकी पहली कहानी "मां" कल्लोल में ही छपी थी किन्तु उन्होंने बाद में उससे अलग होकर कोयले की खान में काम करने वाले मज़दूरों, संथालों की समस्याओं को अपनी कहानी की विषय-वस्तु बनाया।

सरोजराय चौधुरी की भी कई कहानियां कल्लोल में छपी थीं। ताराशंकर का परिसर वीरभूम जिले का रांगा माटी है तो सरोज बाबू का परिसर मुर्शिदाबाद जिला। इसके बावजूद ताराशंकर एवं सरोज रायचौधुरी में मौलिक अंतर है। सरोज बाबू ने भी मुर्शिदाबाद जिले के लोगों की जीवन यात्रा को लेकर कहानी की रचना की है किन्तु इनकी कहानी में उतनी आंचलिकता नहीं है, जितनी कि ताराशंकर की कहानियों में है। फिर भी सरोज बाबू की रचनाओं में ताराशंकर की तरह ग्रामीणों के प्रति स्वाभाविक ममत्व बोध है।

. प्रबोधकुमार सान्याल ने कल्लोल एवं कालिकलम पत्रिकाओं के लेखक होते हुए भी, अपने को उन लोगों से अलग रखा। इनकी कहानियों की विषयवस्तु प्रेम-सम्बंध हैं। इन्होंने स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बंधों को लेकर बहुत सी कहानियां लिखी हैं। किन्तु यौन-सम्बंधों के चित्रण से अपने को मुक्त रखा है। नारी उनकी सृष्टि में दीदी या प्रियवान्धवी है। 'प्रियवान्धवी' इनका बहुत ही लोकप्रिय उपन्यास है। 'दीदी' नाम की कहानी कल्लोल पत्रिका में ही छपी थी। उनके पात्र शहर में काम करने वाले मज़दूर मछुआरे, गाड़ीवान, राजमिस्त्री आदि हैं।

मानिक बनर्जी प्रारम्भ में कल्लोल गोष्ठी के लेखक थे किन्तु कालान्तर में वे विचित्रा गोष्ठी में चले गए। इनकी कहानियों में यौन-सम्बंध एवं फ्रायड के विचार परिलक्षित हैं। इनकी प्रथम कहानी 'अतसी मामी' विचित्रा में छपी थी।

बनफूल "बलाइचंद्र मुखोपाध्याय" पेशे से डॉक्टर थे एवं बंगाल से बाहर बिहार के भागलपुर जिले में रहते थे। जब वे कलकत्ता मेडिकल कालेज के छात्र थे उसी समय उनकी "चोख गेल नामे" कहानी प्रवासी पत्रिका में छपी थी। चिकित्सक होने के कारण, अपनी कहानियों में चिंतन की मौलिकता, सूक्ष्म मननशीलता एवं विभिन्न प्रकार के विश्लेषण एवं परीक्षण-निरीक्षण का चित्र प्रस्तुत कर उन्होंने नवीन अभिव्यक्तियां देने का प्रयत्न किया है।

बंगला कहानी के चलायमान युग में अन्नदाशंकर राय, एक ऐसे कहानीकार हैं, जो युग के साथ कदम से कदम मिलाते हुए, सजग प्रहरी की तरह मानव जीवन का चित्र बड़े ही कुशलतापूर्ण, कला-कौशल के साथ चित्रित करते रहते हैं।

देश के स्वाधीन हो जाने के बाद बंगला कहानी ने एक नए युग में कदम रखा। देश स्वतंत्र तो विभाजन के आधार पर हुआ किन्तु उससे राजनीतिक स्वतंत्रता ही मिली। इससे सामाजिक स्थिति और भी दुरूह हो गई। देश के विभाजन के फलस्वरूप शरणार्थी समस्या आई। जीविकोपार्जन के लिए सभी शहर की ओर भागने लगे। देश का विभाजन होने से अपने भी पराये हो गए। चारों ओर हा-हाकार मचने लगा। मानव का मूल्य बोध विषम परिस्थितियों में पड़ कर बिखरने लगा। उधर राजनीतिक नेता अपनी स्वार्थपरता के लिए

चालें चलने लगे। इन सब परिस्थितियों के परिणामस्वरूप स्वातंत्र्योत्तर कहानी एक नया रूप लेकर उभरी। इस काल के कहानीकारों में विमल मित्र, विमल कर, सुनील गांगुली, समरेश वसु, मती नन्दी, शीर्षेन्दु मुकर्जी, नारायण गांगुली, सैयद मुस्तफा सिराज, गजेन्द्र कुमार मित्र, संतोष कुमार घोष, महाश्वेता देवी, प्रतिभा वसु, कविता सिंह, आशापूर्णा देवी, लीला मजुमदार आदि प्रमुख हैं। इन लोगों ने अपनी कहानियों का विषय आज के लोगों में व्याप्त कष्ट, पीड़ा, सुख-दु:ख, वेदना, राजनीतिज्ञों की चालबाज़ियों आदि को बनाया है। इधर और भी बहुत से नए कहानीकार सामने आ रहे हैं, जिनकी कहानियों का विषय आज की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांप्रदायिक स्थितियां हैं। इनके जीवट को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि बंगला कहानी एक बार पुन: परिवर्तन की चौखट पर दस्तक देने लगी है। आशा करनी चाहिए कि इन सब कहानीकारों के योगदान से बंगला कहानी का भविष्य उत्तरोत्तर उज्ज्वल होता जायेगा।

———

निवेदन

★ प्रकाशित रचनाओं पर उपयुक्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।

★ जम्मू-कश्मीर में कला, संस्कृति और साहित्य के आकलन और उसके विकास को रेखांकित करने वाली सामग्री को शीराज़ा में वरीयता दी जाती है।

★ रचनाएं कागज़ के एक ओर सुबाध्य अक्षरों में लिखकर अथवा टाईप करवा कर भेजें। कॉर्बन-कॉपी पर विचार नहीं किया जाता है अत: उसे अपने पास ही रखें तो बेहतर होगा।

★ स्वीकृत अथवा विचाराधीन रचनाओं की सूचना यथासमय भेज दी जाती है। अस्वीकृत रचनाओं को लेकर किसी प्रकार का पत्राचार अपेक्षित नहीं है।

★ 'पुस्तकें और पुस्तकें' स्तम्भ के अंतर्गत समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियां भेजना आवश्यक है।

—सम्पादक

दो कविताएं

—पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

सपना

सुबह जब होती है
खिल जाती हैं तब फूलों की पंखुड़ियां
मेरी मां महकती हुई
अपने आंचल को
कमर में खोंसकर बड़े जतन से
लीपने लगती है घर-आंगन
बड़ी तन्मयता से अपनी सधी हुई
अंगुलियों के पोरों की कूंची बनाकर
मांडणे मांडती है

भावना को अभिव्यक्ति
सार्थक हो जाती है
चाक-मिट्टी गेरू के खुशनुमा
रेखांकनों को देख मुस्करा उठती है
अर्चना के गीत गुनगुनाते हुए
किन्तु गली के मोड़ पे
पथरा जाती हैं स्नेहमयी वे दो आँखें

न जाने मेरी माँ का
वह कौन सा सपना है
जो वह दिन में भी देखती रहती है
हर तरह की व्यस्तता के बावजूद

दोपहर

एक भरा पूरा शहर
सूरज के साथ तप कर
लोहार की भट्टी पर चढ़े लोहे की
अग्निवर्णी शक्ल में बदल गया है
सड़कों पर चहल-कदमी करता हुआ
पूरा नागरिक समूह
स्लेट पर पड़े पानी के धब्बे सा
खो गया है अस्तित्वहीन अक्षरों में

मौत और ज़िन्दगी के बीच झूलते हुए
पेड़ों के बदन में
आलपिन की तरह चुभती हैं
माथे पर आये सूरज की किरणें
और हवा को बहाना मिल गया है
किसी जंगल की अनचाही डगर पर
पांवों के निशान छोड़ने का

तलाकशुदा भीड़ का रेला
मजबूर करता है दुकानदारों को
अधूरी रही जो नींद उसे पूरा करने
तथा पीछा करती हुई परछाई का
फोटो खींचने के लिए

इसी दोपहर के बारे में सोच रहा था
शायद जो मुझे मिली है
दुर्घटनाओं और तेज रफ्तार वाले वाहनों से
दूर बहुत दूर
जो निर्जन पथ से बतियाती रही है।

पुस्तकें और पुस्तकें

★

इस बार शायद

इस बार शायद[1] जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार के प्रयासों को अकादमियां सामने लाएं, प्रोत्साहन दें, यह भी कम जरूरी नहीं है। पुस्तक पर किसी प्रकार की कोई सम्मति या कवि-वक्तव्य नहीं। यह अच्छी बात है, किन्तु कवि का संक्षिप्त परिचय कविताओं को समझने में सहायता और सन्दर्भ देता है, वह ज़रूर होना चाहिए था। खैर!

इस बार शायद की इन कविताओं को पढ़ने के बाद कवि का स्वर निराशा में भीगा हुआ लगा। इस निराशा के पीछे कारण-स्वरूप व्यक्ति की वे परिस्थितियां हैं, जिन पर अब उसका वश नहीं रहा। इस परवशता में घिरी निराशा को भोगते व्यक्ति की पीड़ा के साक्षात्कार में संग्रह की अधिकांश कविताएं संभव हुई हैं।

इस बार शायद शीर्षक कविता अपनी अन्विति, प्रभाव, तनावपूर्ण विचार संप्रेषण के कारण संग्रह की सर्वोत्तम कविता है। यहां बिम्ब-प्रतीक आदि वैचारिक दखल के कारण अनिवार्य रूप से समाजार्थिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों में खुलते हैं। कवि आशय प्राकृतिक मौसमों तक सिमटा न रह कर समूचे परिवेश और उसके अन्तरवर्ती जीवन–रंगों–सम्बधों–व्यवहारों–दशाओं तक के अमानवीय मिज़ाज को उघाड़ा गया है—

चलते चलते / सहसा / पतझड़ के इस मौसम में / एक सूखा पत्ता / मेरी छाती पर आ गिरा / गत वर्ष की तरह···इस बार शायद / कोई बूंद अमृत ही न मिले / और यह मृत्यु अनंत हो / इस बार शायद / हवाओं के हाथ में / हों नुकीले खंजर / बारिश तक जहरीली बरसे / ओ मेरी मृत्यु के गवाह पेड़ / उनको चलते बताना / जो तेरी राह से गुजरें— / ज़ख्म से मौत तक / एक और ज़िन्दगी है / बहुत जरूरी है जिसके लिए / एक अदद उम्मीद भी।

(पृ० ९, १०)

---

१. "इस बार शायद" (कविता संग्रह); कवि : महाराजकृष्ण संतोषी; प्रकाशक : निरस्तंद्र प्रकाशन, ३५ कूचा कर्मचंद, जम्मू (तवी) १८०००१; पृ० संख्या : ६०; आकार : क्राउन; सजिल्द मूल्य : दस रुपये।

परिवेशीय हिंसा और नीतियों के कई क्रम हैं। इनमें से यह एक भी जो वर्तमान है— इसी के वजूद और वजह के दबाव-तले कवि अनंत मृत्युवाली संभावनाओं के यथार्थ तक पहुंचा है। जीवन-श्वास देने वाली हवाओं (मानवीय माहौल देने वाली नीति-निर्धारक शक्तियां जो हिंसक इरादों से सज्जित हैं) के बदले हुए तौर-तरीकों को प्रश्रय दे रही हैं।

इन बत्तीस कविताओं में बीस से अधिक बार सूरज का प्रयोग खटकता है। भले ही उससे वर्तमान के तेज विहीन एवं जीवन के विपर्यय मूल्य-विचार प्रकट हुए हैं। उदाहरणार्थ—

लेकिन इस सूरज की रोशनी से
आ रही है तेजाब की बू।
हवाएं जहां से भी गुजरती
रेत बिखरा देती हैं… (पृ० २५)

किन्तु बहुत सी कविताएं एवं कवितांश निःतान्त प्रकृतिपरक अर्थों में उजागर हुए हैं—

मैं बाहर आ गया था
हाथ फैलाए खड़ा रहा
सर्द चेहरे पर
कुछ स्पर्श धूप के
जज्ब कर लूं। (पृ० २३)

संग्रह की कविताओं में 'एक कविता तलाशता रहता हूं', 'प्रलय', 'तलाश अभी जारी है' आदि कविताएं और कई कविताओं की छिट-पुट पंक्तियां मार्मिक बन पड़ी हैं; यहां विचार का कविताओं में वर्तमान स्वरूप और दखल मुखर है, यों अहिंदी भाषी क्षेत्र के कवि का प्रथम प्रयास काफी आश्वस्त करने वाला है और स्वागत योग्य भी।

—डॉ० बलदेव वंशी
डी-१६३, अशोक विहार, फेज़-१, दिल्ली-११००५२

चेरी के फूल

चेरी के फूल[२] में लगभग तेरह कहानियां संग्रहीत हैं। यह कहानियां अपने भौगोलिक संकेतों से जम्मू-कश्मीर की मनोरम धरती पर जिए जा रहे जीवन की अनुभूति मूलक पहचान प्रस्तुत करती हैं। अधिकांश कहानियों में भावबोध अधिक प्रबल है; विचारबोध केवल अनुभूति का अनुगामी होकर रह गया है। इन कहानियों को पढ़कर लगता है कि लेखक के परिवेश में अभी प्रकृति-व्यवस्थाओं और मनुष्य के बीच समायोजन की स्थिति बनी हुई है। प्रकृति से मनुष्य को विमुख करने वाली वैज्ञानिक प्रगति से मनुष्य की भाव प्रवणता को अभी वहां कोई खतरा नहीं है। प्रकृति और मनुष्य के बीच का संघर्ष मौलिक प्रक्रिया न बनकर अभी स्वाभाविक धर्म बना हुआ है। दमघोटू रासायनिक प्रदूषण से अभी जम्मू-कश्मीर के चेरी,

२. चेरी के फूल (कहानी संग्रह) / लेखक : अशोक जेरथ / प्रकाशक : निस्तंद्र प्रकाशन, जम्मू / पृ० : १०४ / संस्करण : १९८० / आकार : क्राउन / मूल्य : १३-०० रुपये।

चीड़ और देवदारों को कोई सरोकार नहीं है। अत: वनस्पति, नदियों, पहाड़ों के आंचल में बसा मनुष्य जीवन विचारशील कम अनुभूतिजीवी अधिक है। कहानियों के पात्र सोचते कम हैं महसूसते अधिक हैं और जो सोचना है वह भी महसूसने की सहायक प्रक्रिया है। यहां जीवन और परिवेश के बीच कोई आतंक, द्वंद्व अथवा विसंगति नहीं है बल्कि एक स्वाभाविकता है, मनुष्य की नियति की स्वाभाविकता। इस विश्लेषण के प्रमाणस्वरूप 'शालवीथी के घेरों में', 'धुंधवाते देवदार', 'समाप्ति से पहले', 'कांटे' और 'कितने हाथ' कहानियों को देखा जा सकता है।

दूसरे प्रकार की वे कहानियां हैं जो 'महसूस' के साथ 'सोच' को भी लेकर चलती हैं। वेशक अनुभूति की अपेक्षा विचार या सोच ज्यादा सामयिक होती है किन्तु कुछ सांस्कृतिक माहौल ऐसा बन गया है कि मनुष्य के हृदय ने बुद्धि के अनुशासन को स्वीकार कर लिया है। अत: परिवेश के दबाव अनुभूति के सामने प्रश्न खड़े कर देते हैं। अनुभूति और प्रश्नों के टकराव में ही रचनाधर्मिता की सही पहचान उभरती है। अशोक जेरथ की कुछ कहानियां रचनाधर्मिता की इस सही पहचान को उभारती हैं। इस सम्बंध में 'चीड़ें झुकती हैं', 'नये सफर की शुरुआत', 'चेरी के फूल' और 'अपराजेय' कहानियों के नाम लिए जा सकते हैं। इन कहानियों में लेखक की संवेदनशीलता के साथ बौद्धिक जागरूकता का परिचय भी मिलता है। वह भावुकता के हाहाकार के बीच पात्रों की गम्भीर चितवृत्ति को भी पहचान सका है। विशेष रूप से 'अपराजेय' कहानी में मनुष्य की संघर्षशीलता में विश्वास कहानीकार के गुणात्मक मूल्यबोध की सूचना देता है। शिल्प की दृष्टि से भी यह चार कहानियां सराहनीय हैं। 'अपराजेय' को संग्रह की श्रेष्ठ कहानी माना जा सकता है।

कुछ कहानियां जैसे 'ज़ख्म', 'जम्बोला' और 'जीवन' आदि मात्र बयान बनकर रह गयी हैं। घटना का वर्णन तो हो गया है किन्तु कोई रचनात्मक मूल्य वे नहीं प्राप्त कर सकीं। कुल मिलाकर ये कहानियां अनुभूतिमूलक ताज़गी से प्रभावित करती हैं और लेखकीय सामर्थ्य के प्रति आशान्वित भी। परन्तु लेखक को 'दोहराने' की सीमा के प्रति एहतियात बरतने की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

—डॉ० कीर्ति केसर

WH-७६, कपूरथला रोड, जालन्धर शहर–१४४००१

सम्भवामि युगे युगे

सम्भवामि युगे युगे[3] हरिजीत कृत पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित नाटक है। यह नाटक छ: दृश्यों में विभाजित है। प्रस्तुत नाटक में जन-जन को विदित महाभारत की उसी कौरवों और पांडवों की कथा को कथानक बनाया गया है जिसमें यह दिखाया गया है कि धर्म की सदैव जीत होती है तथा अधर्म की हार होती है। नाटककार ने इस पौराणिक कथा को जीवन के नवीन संदर्भों से जोड़ा है। इसमें उन्होंने आज की राजनैतिक अवस्था पर अप्रत्यक्ष

---

३. लेखक : जि० जे० हरिजीत / पृष्ठ : ८० / मूल्य : १२ रु० / प्रकाशक : वाणी प्रकाशन।

रूप से व्यंग्यात्मक गहरी चोट की है। कौरवों तथा उनके मामा शकुनि को आधुनिक सत्ता लोलुप शासक के रूप में बतलाया गया है जो बिना पेंदी के लोटे के समान लुढ़कते रहते हैं और स्वार्थ सिद्धि करने के लिए नित्य नए ढोंग रचते हैं। दुर्योधन के मामा शकुनि का बार-बार चूढ़ाकरण करना एक ढोंग ही तो है।

ढोंगी शासक जिस भांति निरीह जनता को अपने पक्ष में करने के लिए नित्य नई प्रतिज्ञाओं के व्यूह रचते हैं ऐसे ही मामा शकुनि भी कौरवों के लाभहेतु जनता को ठगने के लिए इतनी प्रतिज्ञाएं करते हैं कि उन्हें स्वयं भी प्रतिज्ञाओं की सूची याद नहीं। (पृ० १३)

शासक अपने से इतर वर्ग को नीचा दिखलाने के लिए किस भांति के कपट को अपनाता है इस तथ्य की पुष्टि 'सम्भवामि युगे युगे' में उस समय भली प्रकार से हो जाती है जब दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ अनजान व्यक्ति का रूप धारण करके शकुनि के ऊपर जन-समूह के समक्ष हत्या के उद्देश्य से वार करता है। दुर्योधन के कर्मचारियों द्वारा पकड़े जाने पर वह झूठ में ही पांडवों द्वारा भेजा गया व्यक्ति बतलाकर जनता के समक्ष अपना पाप स्वीकार करता है। वस्तुतः यह सब अभिनय होता है ताकि जनता की सहानुभूति कौरवों के प्रति हो जाए। (पृ० ४१)

महाभारत का कथानक होने पर सम्पूर्ण नाटक में कौरवों और पांडवों का संघर्ष दिखाया गया है। जिस में सत्ताधारी कौरव छल-कपट, अहिंसा, अधर्म एवं अन्याय का दामन थामकर शोषित पांडवों पर अनाचार करते जाते हैं। परन्तु अन्ततः शोषित वर्ग अर्थात् पांडव कृष्ण के नेतृत्व में स्व अधिकार निमित्त कुरुक्षेत्र में युद्ध कर कार्य की सिद्धि पाते हैं। परन्तु उन दोनों दलों की स्वार्थ सिद्धि की टक्कर में नागरिकों को दोहरी मार खानी पड़ती है। एक ओर घर के सभी सदस्यों को युद्ध में भेजकर तथा दूसरी ओर बारह साल का कर अग्रिम देकर। उनके जीवन की किसी को भी चिन्ता नहीं है।

सत्ता लोलुप नेताओं के प्रकोप से क्रोधित युवा वर्ग तथा बुद्धिजीवी के मनोभावों को हरिजीत ने सटीक ढंग से इस नाटक में प्र तुत किया है। प्रस्तुत नाटक में जब कौरव युद्ध के निमित्त लोगों को जबरदस्ती युद्ध के मैदान में भेज रहे होते हैं तब जनता को सचेत करता हुआ युवक कह उठता है, 'इन नेताओं के स्वार्थ में हम क्यों बलि के बकरे बनें? इनके जाल में हम क्यों फंसे'। (पृ० ४८)

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने हर एक युग के सत्य को अपनी प्रभावोत्पादक लेखनी से रेखांकित किया है। संवादों में हास्य-व्यंग्य है, कहीं-कहीं मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है (चोर की दाढ़ी में तिनका; नक्कारखाने में तूती की आवाज)। अलग-अलग रसों का सम्मिश्रण होने के कारण अलग-अलग वर्ग के पाठक एवं दर्शक के हृदय को प्रभावित करने वाला है। रंगमंचीय दृष्टि से यह छः दृश्यों का नाटक पूर्णतया सफल है। वस्तुतः यह नाटक हरिजीत की मौलिक अभिव्यक्ति का एक सुन्दर, हृदयस्पर्शी एवं रोमांचकारी रूप है।

—सिम्मी गुप्त
कन्या उ० मा० विद्यालय, रामनगर, ज० क०

आपकी बात

★

★ शीराज़ा का उपन्यास अंक देखा। काफी सामग्री जुटाई गई है। संपादकीय में आपने एक सार्थक सवाल उठाया है 'दर्शन विशेष के वशीभूत होकर अमीरों के खिलाफ बोलने या गवाही देने के लिए लिखने का'। सच यही है कि कुछ लेखकों को छोड़कर अन्यों के लिए प्रतिबद्धता एक फैशन की चीज बन गई है। मध्यमवर्गीय चौखट में जब पूंजीवादी अरमान मचल जाते हैं, तो लेखक भी एक मोर्चा तैयार करता है, प्रतिबद्धता को ओढ़ लेता है। पर जब तक प्रेमचंद और रेणु की तरह जीवन और लेखन एक दूसरे के पर्याय नहीं बन जाते, तब तक लेखन भी ईमानदार और महत्त्वपूर्ण नहीं हो पाता। लेखकों के संपादक-मित्र अपने वर्ग के लेखकों को चाहे जितना उछाल लें।

डॉ॰ गोपाल ने आठवें दशक के उपन्यास पर व्यापक सर्वेक्षण पेश किया है। न जाने क्यों एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास उनके सर्वेक्षण से बाहर रह गया है। डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय का 'कालिदास' उपन्यास कई मानों में हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'पुनर्नवा' के कालिदास का पूरक है। पूरक इसलिए कि हजारी प्रसाद जी के कालिदास में भाववृत्ति प्रधान रही है और डॉ॰ उपाध्याय के कालिदास में इतिहासवृत्ति। 'कुरु कुरु स्वाहा' के बारे में अलग-अलग मत हो सकते हैं। पर हिन्दी-लेखन और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों पर जितने बारीक व्यंग्य किये गये हैं, वे इस उपन्यास को अनूठा बना देते हैं। शैली की दृष्टि से यह जितना बेजोड़ है, व्यंग्यों की दृष्टि से बहुत ही मारक।

शीराज़ा ने पूरे दशक की उपन्यास-यात्रा को समेटने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ॰ विवेकीराय का आलेख 'मानवतावादी उपन्यासकार : डॉ॰ रामदरश मिश्र' भी व्यापक है, समग्र को समेटने वाला।

मेरी ओर से बधाई स्वीकार करें, हिन्दी संसार को इस भेंट के लिए।

—बी॰ एल॰ आच्छा

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म॰ प्र॰)

★ डॉ० ओमप्रकाश गुप्त का मैं बहुत ही आभारी हूं कि उन्होंने 'पत्तों की बिरादरी' पर इतना अच्छा, गहरा और विचारपूर्ण लेख लिखा। वह उन गिने-चुने लोगों में से हैं, जो कृति को आत्मीय भाव से लेते हैं और फिर उसके माध्यम से लेखक की दुनिया के भीतर प्रवेश करते हैं।

—मणि मधुकर

७/२, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

★ शीराज़ा के तीन अंक एकसाथ मिले। जहां तक संपादकीय कृतित्व का प्रश्न है आप बहुत परिश्रम कर रहे हैं और साजसज्जा, दृष्टि, आकर्षण इत्यादि दृष्टियों से 'शीराज़ा' के संपादन की सराहना करना होगी। लेकिन लगता है कि हिन्दी के विद्वान् अभी आपको सही रूप में सहयोग नहीं दे पा रहे हैं। मैंने देखा है कि हिन्दी के मान्यवर पंडित ऐसी सामग्री आपको दे रहे हैं जो लेखन कर्म के प्रति दायित्व से नहीं, कुछ माया जोड़ने के लोभ से दी जा रही है। कृपया इस प्रकार के सहयोग से बचें।

—डॉ० चंद्रकांत बांदिवडेकर

७, शाकुंतल, साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व), बम्बई–४०००५१

★ शीराज़ा का उपन्यास अंक बहुत अच्छा है। समकालीन उपन्यासों पर महत्त्वपूर्ण सामग्री इसमें है। आपने अपने ही ढंग से कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक जैसी विधाओं पर विशेषांक निकाले हैं—और मैं उन सबका पाठक रहा हूं—इसलिए आश्वस्त हूं कि आने वाले समय में दूसरी बहुत सी अच्छी चीजें आप शीराज़ा के माध्यम से देंगे।

—डॉ० गंगा प्रसाद विमल

२६/५३, रामजस रोड, करौल बाग, नई दिल्ली

★ सिम्मी हर्षिता की कहानी 'काजू' (अंक ५१) पढ़ी, जो अपनी सादगी में मन को छू गयी। इसी अंक में विवेकीराय का लेख 'समकालीन कहानी : आंचलिक परिवेश' भी अच्छा लगा। अंक ५३ में प्रकाशित परिचर्चा—'आजका हिन्दी उपन्यास – दशा, दिशा और संभावना'—पढ़कर ऐसा लगा कि परिचर्चा जानदार रही होगी और माहौल निस्संदेह प्रेरक।

अंक ५५ के मुखपृष्ठ पर कवि-लेखक श्री बंसीलाल सूरी का रेखा-चित्र देखकर प्रसन्नता हुई। कलात्मक कवर अपनी जगह ठीक है, पर यदा-कदा साहित्यिक पत्रिका के मुखपृष्ठ पर साहित्यकार की छवि अच्छी लगती है।

—मंजुल भगत

ई–२८०, ईस्ट ऑव कैलाश, नई दिल्ली

★ उपन्यास अंक वैसे तो ठीक है किन्तु अच्छा होता यदि पिछले वर्ष के या पिछले तीन वर्षों के कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यासों पर लम्बी समीक्षा होती।

—डॉ० विनय

२५, बंगलो रोड, दिल्ली–११०००७

★ आकर्षक एवं ज्ञानवर्द्धक उपन्यास अंक पाकर बेहद प्रसन्नता हुई। अंक वास्तव में संग्रहणीय बन पड़ा है।

—इंद्रा किलम

१९८, कर्ण नगर, श्रीनगर

★ शीराज़ा के तीन अंक एकसाथ प्राप्त हुए। धन्यवाद ! कश्मीर की संत कवयित्री ललद्यद पर अंक ५२ में प्रकाशित लेख बड़ा सारगर्भित और ज्ञानवर्द्धक है। श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग को मेरी बधाई। कहानियों में 'शेष रहा प्रश्न' मन को छू गई।

उपन्यास अंक में प्रकाशित परिचर्चा हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास को संकेतित करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। उपन्यास अंक का सारा आयोजन बढ़िया बन पड़ा है।

—अवतार कृष्ण राज़दान

८३–पुरुषयार, हब्बाकदल, श्रीनगर

★ अंक ५५ में प्रकाशित डॉ० सोमनाथ कौल की दोनों कविताएं मुझे अच्छी लगीं। कृपया उन तक मेरी बधाई पहुंचा दें।

—क्षमा कौल

८७, न्यू सेक्टरेट रोड, श्रीनगर

★ उपन्यास अंक की विशेष रूप से सराहना करना होगी। उपन्यास लेखन तथा चर्चित उपन्यास साहित्य पर खुलकर बहस की गई है जो रोचक तो है, विचारोत्तेजक भी है। स्थानीय लेखकों के प्रकाशित उपन्यास अंग इस बात का संकेत देते हैं कि अब यहां इस विधा में भी रचना हो रही है। यह बात उत्साहवर्द्धक है।

अंक ५५ के माध्यम से नयी प्रतिभाओं को खोजने एवं सामने लाने में आपको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

आशा है भविष्य में भी आप रचनात्मक साहित्य एवं आलोचना में इसी प्रकार संतुलन बनाए रखने के साथ आधुनिकता के साथ परम्परा को भी निभाते रहेंगे।

—बंधु शर्मा

पक्की ढक्की, जम्मू

★ 'मोहभंग' (अंक ५२) कहानी बहुत अच्छी लगी। 'अपनी बात' (अंक ५४) के संदर्भ में निवेदन है कि हमें देखना यह है कि वास्तव में लेखक की आस्था किस चीज़ के साथ है। कहीं वह ऐन मौके पर अपनी आस्था और अपनी ही प्रकट विचारधारा के विरुद्ध आचरण तो नहीं करता—क्योंकि आस्था के बगैर लिखा नहीं जा सकता—व्यवस्था की कटुता से उत्पन्न पीड़ा को झेलते हुए जिस रचना का वह सृजन करता है उसी व्यवस्था के विरोध में उठे हुए हाथों को थामने की जगह जब वह उन्हें काटता है या कैद करता है तो उसकी रचना का सच डगमगाता ही नहीं झुठला भी जाता है—ऐसा आदमी हमेशा अपनी ओर से सचेत और तैयार होता है।

—महाराज कृष्ण शाह

देना बैंक, श्रीनगर

अकादमी डायरी

★

★ २८ अप्रेल १९८१ को अभिनव थियेटर, जम्मू में रि-ओरियटेशन कोर्स के लिए आए राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के मनोरंजनार्थ एक सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की सभी ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

★ १८ मई से २१ मई १९८१ तक स्थानीय त्रिकुटा फिल्म सोसायटी के सहयोग से चैकोस्लोवाकियन फिल्मों का एक समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर प्रदर्शित फिल्मों के नाम थे—

१. कलोज़ली वाचड द' ट्रेन
२. मेडन एण्ड द' बीस्ट
३. द केस ऑफ रैबिट
४. वैली ऑफ बीयरस

★ २३ मई १९८१—पर्वत प्रदेश रामनगर के गांव थिहाल में एक रूरल मुशायरे का आयोजन किया गया जिसमें निम्नलिखित कवियों ने भाग लिया—सर्वश्री सुदर्शन खजूरिया, किशनदत्त बड़याल, साधुराम शर्मा, शामलाल शर्मा, बलदेव सिंह, चरणदास मगोत्रा, अनिल कुमार, ओमप्रकाश शर्मा, छज्जू राम, मंगूराम जण्डयाल (स्थानीय) शिवराम दीप और अश्विनी मगोत्रा (अतिथि कवि)।

———

Regd. No. 28871/76 Sheeraza Hindi *Bi-monthly' May 1981*

J&K ACADEMY OF ART CULTURE & LANGUAGES

A Publication of :
J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu.
Printed at : Amar Art Fress. Moti Bazar, Jammu.